विचार

वर्ष : 22 अंक : 2 (77वाँ अंक) अप्रैल-जून, 2017

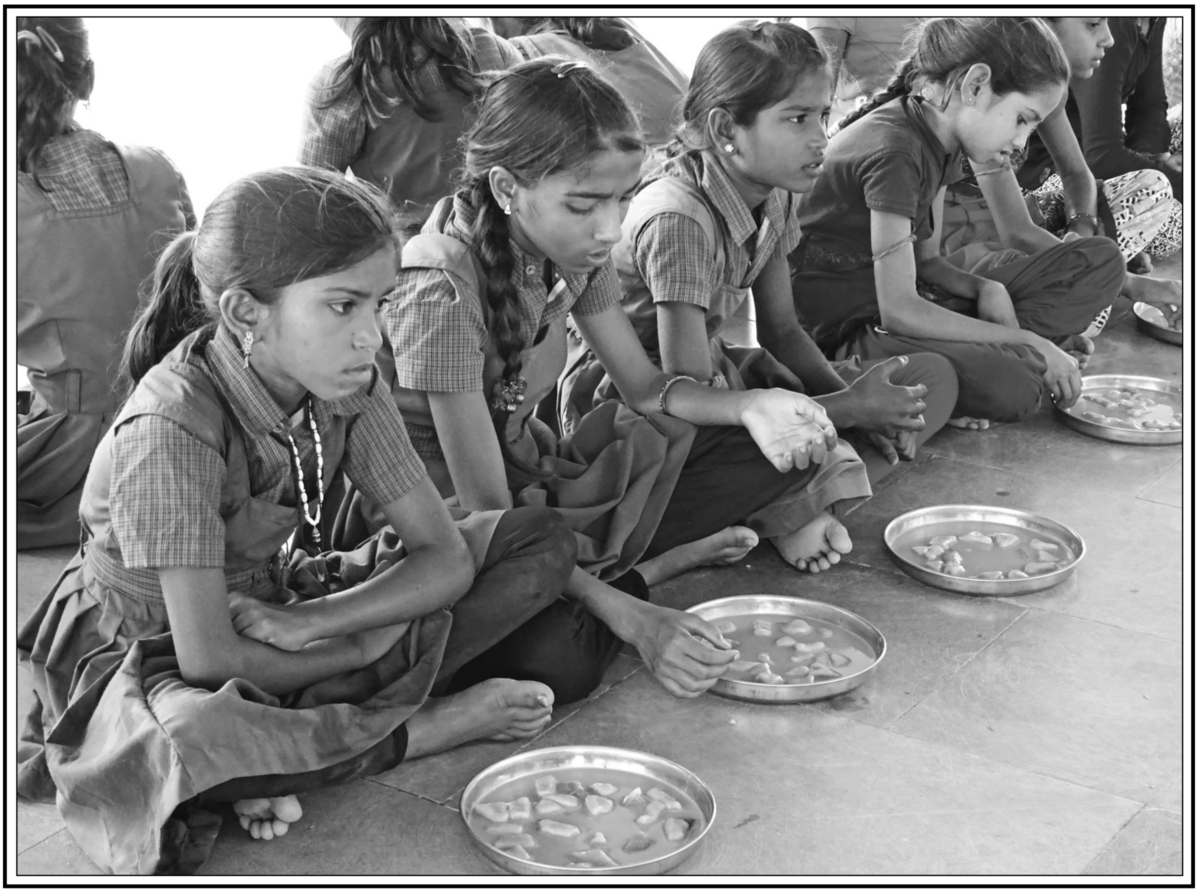

भारत में कुपोषण को समझने की जटिलताएँ:
प्रकाशित शोध पत्रों की समीक्षा व अनुभव

यूरोपीय संघ

उन्नति
UNNATI

■ **संपादकीय**	**3**
■ भारत में कुपोषण को समझने की जटिलताएँ: प्रकाशित शोध पत्रों की समीक्षा व अनुभव	**5**
■ भारत में 'सार्वत्रिक मूलभूत आय' (यूनिवर्सल बेसिक इनकम) - कार्यान्वयन की संभावनाओं को समझना	**11**
■ स्त्री-पुरुष समानता की चुनौतियाँ (जेन्डर चैलेन्जेज))	**15**
■ क्या महिला सशक्तिकरण से घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में बढ़ोतरी होती है?	**18**
■ भारत में शिक्षा के क्षेत्र में निजी और सरकारी स्कूलों में अभिनव पहल के माध्यम से शिक्षा के स्तर में सुधार किया जा सकता है	**21**
■ हताशा (अवसाद) के खिलाफ लड़ाई में असमानताओं पर ध्यान केंद्रित करना क्यों आवश्यक है?	**24**

संपादकीय

डिजिटलीकरणः बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता में सुधार

मोबाइल टेलीफोन और इंटरनेट की तकनीकी क्रांति ने हाल के वर्षों में औद्योगिक और विकासशील देशों में ऊँची छलांग भरी है। आज, भारत में स्थिति यह है कि बिजली या स्वच्छता सुविधाओं की तुलना में मोबाइल फोन का प्रसार ज्यादा अधिक है। इसके अलावा, नागरिक और सरकारी निकाय विशेष रूप से मोबाइल प्रशासन, सांविधिक और असांविधिक सेवाओं के लिए अधिक से अधिक ऑनलाइन ट्रांजेक्शन का लाभ ले रहे हैं और सामाजिक लाभों का फायदा उठा रहे हैं। अब तक कई अभिनव पहल ऐसी थी जिनके लिए इंटरनेट उपलब्ध होना जरूरी था और इसलिए, डिजिटल उपकरणों वाले वर्ग ही इसका उपयोग कर सकते थे। हालांकि, तकनीकी क्रांति के मद्देनजर अब मोबाइल फोन जानकारी के प्रचार-प्रसार का साधन बन गया है और ग्रामीण वर्ग तक पहुंचना संभव हुआ है।

सार्वजनिक सेवाओं में डिजिटलीकरण के कई फायदे हैं, जैसे प्रणालीगत भ्रष्टाचार, कामकाज में देरी और लाल फीताशाही के लिए जिम्मेदार बिचौलियों को दूर करना। सरकार की योजना में नकद रकम हस्तातंरण करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक भुगतान प्रणाली से वित्तीय अनियमितताओं में कमी आती है। इसका सीधा लाभ उपयोगकर्ता को मिलता है। भारत में जारी कुछ उल्लेखनीय अनुप्रयोगों में कृषि की सर्वोत्तम प्रथाओं के उपयोग के बारे में किसानों द्वारा तैयार वीडियो आधारित शिक्षण मंच (वीडियो-बेस्ड लर्निंग प्लेटफॉर्म), एसएमएस द्वारा समय पर मौसम की जानकारी और फसलों से संबंधित सलाह, गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण सेवाओं, डिजिटलीकृत बैंक सेवा, बॉयोमीट्रिक प्रमाणीकरण और स्मार्ट कार्ड के माध्यम से सुरक्षित भुगतान, आदि शामिल हैं।

एमजीनरेगा के डिजिटलकरण से वित्तीय अनियमितताओं, डमी भुगतान जैसी समस्याओं को कम करने और काम के दोहराव से बचने में सहायता मिली है। कार्यक्रम का मसौदा तैयार करने और कार्यान्वयन करने में जनसंख्या के आंकड़ों के आधार पर सामाजिक वर्ग के अनुसार साक्षरता आलेखन के काम के लिए जीआईएस का प्रयोग किया जाता है। डिजिटल इंडिया पहल जुलाई 2015 में शुरू की गई थी। 1990 और 2000 के दशक के शुरूआत से ही विभिन्न ई-शासन कार्यक्रम लागू थे, लेकिन डिजिटल इंडिया पहल ने संयुक्त लक्ष्य के साथ व्यापक कार्यान्वयन लागू किया था। इस पहल का उद्देश्य सरकारी सेवाओं और महत्वपूर्ण योजनाओं को देश के दूरदराज और दुर्गम क्षेत्रों तक पहुंचाना, नागरिकों की जरूरतों के अनुसार सेवाएं प्रदान करना और काम के व्यापक अवसर पैदा करना है। यह पहल तीन मुख्य लक्ष्यों पर केंद्रित हैः (1) नागरिकों का डिजिटलीकरण के लिए सशक्तिकरण, (2) प्रत्येक नागरिक को बुनियादी सुविधाएं देना, और (3) मांग आधारित सेवाएं और प्रशासन। इसका प्रमुख उद्देश्य विकासात्मक परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रेरक बल के रूप में आईसीटी का उपयोग करके और आईसीटी पहल के लिए उचित वातावरण पैदा करके मान्य प्रथाओं के व्यवहार और जानकारी के साधनों में रूपांतरण करना है। इसका उद्देश्य आपूर्ति के लिए जिम्मेदार संस्थाएं जिस तरह से प्रतिक्रिया प्राप्त करती हैं, निर्णय लेती हैं और जानकारी और सेवाएं प्रदान करती हैं, उस प्रणाली में बदलाव लाना है। JAM (जन धन योजना, आधार, मोबाइल), डीबीटी (डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर) प्रधानमंत्री बीमा योजना, स्मार्ट शहर, आदि जैसी महत्वपूर्ण अभिनव पहलों को इस काम के लिए सुसज्जित किया गया है।

प्रौद्योगिकी के विकास से सरकारी कार्यों से संबंधित जानकारी की उपलब्धता में सुधार हुआ है (हालांकि व्यवस्था में मौजूद खामियों के चलते पारदर्शिता में विशेष सुधार देखने को नहीं मिला है)। इसके अलावा, विकास के नये एजेंडा में उत्तरदायित्व के मजबूत स्वरूपों की मांग तेज हुई है। अभिनव सामाजिक जिम्मेदारी कार्यक्रम और पहल को तेज गति देने के लिए ये रूप मददगार बने हैं। डेटा संग्रहण, भंडारण और प्रसार

की नई गतिविधियों के साथ जवाबदेही एवं मौजूदा सिस्टम (पारंपरिक मीडिया, चुनाव, संसदीय लोकतंत्र, आदि) भी मजबूत हुआ है।

लोकतांत्रिक और समावेशी समाज का आधार जिम्मेदारी और जवाबदेही वाला देश और जिम्मेदार और सक्रिय नागरिक होता है। इसमें गरीब और सीमांत समुदायों का ध्यान रखा जाता है। देश और नागरिकों के बीच परस्पर व्यवहार के साथ लोकतंत्र का विकास होता है। ई-शासन शुरू किया जा सकता है, लेकिन सिर्फ प्रक्रियाओं को और अधिक कुशल बनाने के लिए ही, डिजिटल लेनदेन के सीमित कार्यों या व्यवहारों को डिजिटल करने तक या सूचना को वेबसाइट पर डालने तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। उसे सरकार के कामकाज में बदलाव लाने और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी को बहाल करने में सहायक होना चाहिए। यह जानकारी प्राप्त करने और जवाबदेही की मांग करने के लिए सरकार के साथ नागरिकों और स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी को बढ़ाने में सहायक होना चाहिए। साथ ही यह नागरिकों द्वारा प्रस्तुत मुद्दों पर प्रतिक्रिया करने के लिए और नीति की प्रतिबद्धताओं को हासिल करने के लिए सरकार की क्षमता में उपयोगी होना चाहिए।

नई प्रौद्योगिकी का नागरिकों को समावेश करने में सहायक होने के बावजूद सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए संचार माध्यमों के लिए इस्तेमाल साधनों के बजाए राजनीतिक और सामाजिक कारक अधिक महत्वपूर्ण हैं। परिणाम प्राप्त करने के उद्देश्य से वास्तविक पारदर्शिता के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रशासनिक नेतृत्व आवश्यक है। इसके बाद, जवाबदेही प्राप्त करने के लिए पारदर्शिता के लिए आवश्यक वातावरण प्रदान करना भी आवश्यक है। नागरिकों को सेवाओं के उपयोगकर्ता का दर्जा प्रदान करने के साथ ही नागरिकों और स्वैच्छिक संगठनों को अपने विचार पेश करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करके सरकार की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि नागरिकों और संगठनों द्वारा की गई प्रस्तुति के आधार पर सुधार और मानक तैयार करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति होनी चाहिए।

नागरिक समाज संगठनों को जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। जानकारी प्रदाता मध्यस्थ व्यक्ति लोगों को उनके अधिकारों के विषय में आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराकर लोगों को सशक्त बनाते हैं। इसके लिए मध्यस्थ व्यक्ति सरकारी डेटा एकत्र करता है, उसका विश्लेषण करता है, और सरल और स्पष्ट (जटिल लिखित सामग्री का) रूप में अनुवाद करता है। इस तरह मध्यस्थ व्यक्ति नागरिकों और समुदायों को भागीदारी के लिए सुसज्जित करता है, उनमें आत्म विश्वास का संचार करता है और संबंध स्थापित करने में मदद करता है। गैर सरकारी संगठन समुदाय के वंचित सदस्यों (गरीब, वंचित, दलित) को सहभागी बनाने के लिए विशेष प्रयास करते हैं। सरकार को उन्हें और अधिक अधिकार प्रदान करना होगा और यह देखने की जिम्मेदारी सरकार की होगी कि इन संगठनों की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण नहीं हो।

सरकार को यह भी जानना होगा कि नागरिकों का गोपनीयता का अधिकार भी सूचना के अधिकार जितना ही महत्वपूर्ण है और साथ ही वह डेटा संरक्षण के अधिनियमों के साथ एक कानूनी ढांचा प्रदान करता है। सरकार को उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं और क्षमताओं की सामग्री से लैस करने की आवश्यकता है और भौतिक और सांस्कृतिक अवरोधों के बारे में जानकारी प्राप्त करना होगा। लोगों को किसी कार्यक्रम या उससे संबंधित जानकारी नहीं होगी, तो वे उसका प्रयोग ही नहीं करेंगे। कार्यक्रमों के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए अभियानों को पारदर्शिता, शिकायत निवारण और जवाबदेही की व्यवस्था की जानकारी प्रदान करनी चाहिए। ऐसा करने से डिजिटल इंडिया के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है और विकास के परिणामों को नागरिकों तक कुशलतापूर्वक पहुंचाया जा सकता है। ■

भारत में कुपोषण को समझने की जटिलताएँ:
प्रकाशित शोध पत्रों की समीक्षा व अनुभव

- बिनोय आचार्य, उन्नति

आर्थिक विकास की तरफ आगे बढ़ने और उसे बनाए रखने के लिए सतत खाद्य और पोषण सुरक्षा आवश्यक है। भुखमरी, कुपोषण, और रक्ताल्पता (एनीमिया) को दूर करने में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लंबी अवधि के सामाजिक-आर्थिक विकास से कुपोषण में कमी आ सकती है। इसके साथ ही, खाद्यान्न और पोषण सुरक्षा में तेजी लाने के लिए कई सरकारी और गैर सरकारी योजनाओं को लागू किया गया है। भारत सरकार इस क्षेत्र में उपयुक्त नीतियों, सार्वजनिक कार्यक्रमों और निवेश को तैयार कर रही है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013, शायद आजाद भारत की सबसे बड़ी परियोजना है, जिसमें देश की 75 प्रतिशत आबादी को कवर किया गया है। कई राज्य सरकारों ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम-2013 के आदेश के अनुसार राज्य पोषण मिशन और राज्य खाद्य आयोग भी स्थापित किया है। सभी गर्भवती महिलाओं को 6,000 रुपए देने की नीति पहले छह महीनों के लिए मां और शिशु दोनों के लिए आहार और पोषण हासिल करने की ओर कदम है। भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने 1993 में राष्ट्रीय पोषण नीति तैयार की थी। समेकित बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) इस तरह का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। आईसीडीएस 1975 में शुरू की गई थी। आज यह बच्चों के स्वास्थ्य और विकास की दुनिया में सबसे व्यापक पहुंच वाले कार्यक्रमों में शामिल है। आईसीडीएस का उद्देश्य आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं (प्रशिक्षित सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता) द्वारा चलाए जाने वाले आंगनवाड़ी केन्द्रों और परिवार के स्तर पर सेवाएं प्रदान करके कुपोषण के चक्र को रोकना है। इन सेवाओं में पूरक पोषण, स्कूल पूर्व शिक्षा, टीकाकरण, स्वास्थ्य जांच, स्वास्थ्य, पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा शामिल हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों के कुपोषण और भूख की समस्या को दूर करने के लिए चलायां जा रही मध्याह्न भोजन योजना ऐसा ही अन्य एक महत्वपूर्ण सरकारी कार्यक्रम है। 2016 के बजट में अगले पांच वर्षों में किसानों की आय को दोगुना करने के उद्देश्य से कृषि और किसानों के कल्याण को विशेष महत्व दिया गया है। भारत को खुले में शौचमुक्त करने वाले स्वच्छ भारत अभियान जैसे कार्यक्रमों का पोषणलक्ष्यी कार्यक्रमों के परिणामों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ेगा।

राष्ट्रीय परिवार और स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस -4) के हाल के परिणामों के अनुसार, पांच साल से कम आयु वर्ग के 58 प्रतिशत बच्चों को कमजोर पाया गया था। यह कमजोरी इस तरह प्रतिबिंबित हुई थीः ऊंचाई के अनुसार वजन - 21 प्रतिशत, उम्र के अनुसार ऊंचाई - 38.4 प्रतिशत और उम्र की तुलना में वजन - 35.7 प्रतिशत कम। 2005-2006 में उम्र के अनुसार ऊंचाई का अनुपात 25.6 प्रतिशत (गोवा) से लेकर 55.6 प्रतिशत (बिहार) तक देखने को मिला था। 2015-2016 में यह अनुपात 23.3 प्रतिशत (अंडमान और निकोबार द्वीप) से लेकर 48.3 प्रतिशत (बिहार) तक पाया गया था। 2005-2006 में ऊंचाई के अनुसार वजन का औसत 9 प्रतिशत (मणिपुर और मिजोरम) से लेकर 35 प्रतिशत (मध्य प्रदेश) तक था और 2015-2016 में 27.6 प्रतिशत (दादरा और नगर हवेली) में था। आयु की तुलना में वजन का कम अनुपात 2005-2006 में 19.7 प्रतिशत (सिक्किम) से लेकर 60 प्रतिशत तक (मध्य प्रदेश) और 2015-2016 में 13.8 प्रतिशत (मणिपुर) से लेकर 43.9 प्रतिशत (बिहार) तक देखा गया था। ऊंचाई की तुलना में वजन, आयु की तुलना में ऊंचाई और आयु की तुलना में कम वजन की रेंज में 2005-2006 से लेकर 2015-2016 तक की अवधि में कमी देखी गई। हालांकि, तीसरे और चौथे राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस 4) के अनुसार, 2005-2006 में ऐनिमिया का अनुपात 38.2 प्रतिशत (गोवा) और 78 प्रतिशत (बिहार) के बीच तथा 2015-2016 में 23.9 प्रतिशत (मणिपुर) से लेकर 84.6 प्रतिशत (दादरा और नगर हवेली) के बीच था।

विभिन्न प्रकार के अध्ययन अक्सर कुपोषण और संक्रमण के कारण पांच वर्ष से कम आयु वर्ग की बढ़ती मृत्यु दर की ओर

ध्यान आकर्षित करते हैं। बच्चों की मृत्यु के लिए जिम्मेदार मुख्य कारण कुपोषण है। प्राकृतिक विज्ञान, जीव विज्ञान और चिकित्सा जर्नल (जनवरी-जून अंक, 2015) में डॉ. स्वरूप के. साहू के 'भारत में पांच साल से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण की समस्या और उसके निवारण की रणनीति' नामक प्रकाशित लेख के अनुसार, खाद्य एवं पोषण बुलेटिन (2012) में रामकृष्णन यू. के लेख और इंडियन जर्नल ऑफ न्युट्रिशन एंड डायेटेटिक्स (2014) में खंडेलवाल एस. की प्रकाशित समीक्षा के अनुसार कुपोषण की समस्या का निवारण किया जाए तो बाल मृत्यु दर आधी की जा सकती है। बचपन में कुपोषण के कारण समग्र विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे बच्चे की प्रतिरक्षा प्रणाली को नुकसान पहुंचता है। प्रोटीन और ऊर्जा की कमी से बच्चों का विकास अवरुद्ध होता है। नतीजतन, खाने की मात्रा कम हो जाती है और पोषक तत्व पर्याप्त नहीं मिल पाते। इसके कारण, बच्चे श्वसन संक्रमण दस्त, खसरा और मलेरिया संक्रामक रोगों की चपेट में आ जाते हैं और उनका जीवन खतरे में पड़ जाता है। PLoS मेडिसिन जर्नल (मई 2007) में 'कुपोषण और संक्रमणः जटिल तंत्र और वैश्विक प्रभाव' शीर्षक से उलरिच ई. शेइबल, स्टीफन एच. और ई. कॉफ़मैन के प्रकाशित लेख के अनुसार, गैस्ट्रोइंटेस्टनल संक्रमण के कारण दस्त और तपेदिक हो जाता है। अधिकांश बच्चों को भोजन से पर्याप्त प्रोटीन और कैलोरी नहीं मिल पाती। खासतौर पर 12 से 35 महीनों के आयु वर्ग के बच्चों में कुपोषण का अनुपात अधिक होता है और 36 से 60 महीने के आयु वर्ग के बच्चों में यह अनुपात कम हो जाता है। इसी कारण से शिशु जन्म से 1000 दिनों तक उसकी पर्याप्त देखभाल करने के प्रयासों पर जोर दिया जाता है।

कई कारण और कई गतिविधियां

निम्न और कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उच्च जन्म दर, दो बच्चों के जन्म के बीच कम अंतराल और आहार की अनुचित आदतों से बच्चों के पोषण की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत स्वास्थ्य रिपोर्टः पोषण 2015 के अनुसार, पोषण की बात को संस्कृति के साथ जुड़ी भोजन की आदतों, गर्भवती माता का आहार से वंचित रहना (भुखमरी की स्थिति) जिससे जन्म के समय बालक का वजन कम होता है और इस तरह की कई स्थितियां संरचनात्मक बाधाओं के साथ जुड़ी हुई हैं। बच्चों के बेहतर पोषण और स्वास्थ्य में माता की शिक्षा का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। केवल गिने-चुने शिशुओं को ही जन्म के दो घंटे के भीतर मां का दूध दिया जाता है। भारत में अभी भी अधिकांश शिशुओं को कोलोस्ट्रम नहीं दिया जाता। जन्म से छह महीनों तक केवल स्तनपान करना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता, जिसका बच्चे के कम वजन के साथ सीधा संबंध है। जन्म के समय लगभग एक तिहाई शिशुओं का वजन कम होता है। 60 प्रतिशत महिलाओं को एनीमिया होता है, और गर्भावस्था के दौरान यह अनुपात 85 फीसदी तक हो जाता है। 40 से 60 फीसदी किशोरियां एनीमिया की शिकार रहती हैं। उम्र के शुरू में गंभीर कुपोषण का शिकार बनने के बाद, उसकी अनदेखी के कारण पीढ़ीगत कुपोषण की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसमें सुधार करना जीवन भर के लिए मुश्किल हो जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है, आईसीडीएस का उद्देश्य आंगनवाड़ी केन्द्रों में और परिवार के स्तर पर सेवाएं प्रदान करके पीढ़ी-दर-पीढ़ी (हरेक पीढ़ी में आगे बढ़ने वाले) कुपोषण के चक्र समाप्त करना है। एडब्ल्यूसी और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता बच्चे के जीवन के पहले 1,000 दिनों पर विशेष जोर देते हैं, क्योंकि बच्चे के पूरे जीवन पर इस अवधि का उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, मस्तिष्क के विकास और पोषण पर प्रमुख प्रभाव पड़ता है। आईसीडीएस पर योजना आयोग के मूल्यांकन के शिशु स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा, खानपान की आदतों और पोषण संबंधी पहलुओं के व्यवहार के बारे में जागरुकता की स्थिति प्रत्येक राज्य में अलग-अलग है। बच्चे के जन्म के एक घंटे के भीतर स्तनपान कराने की मात्रा आईसीडीएस लाभार्थियों में बहुत व्यापक स्तर पर देखी गई थी। आईसीडीएस के कदम के बाद लाभार्थी परिवार के बच्चों का स्कूल में प्रवेश का अनुपात बढ़ा है और स्कूल छोड़ने का अनुपात घटा है। टीकाकरण (खसरा को अपवाद स्वरूप छोड़कर) के संबंध में लाभार्थियों और गैर लाभार्थियों के बीच कोई एक विशेष अंतर नहीं देखा गया। इसके अलावा, यह भी देखा गया था कि आईसीडीएस की सेवाओं के प्रभावी कार्यान्वयन के कारण शिशु मृत्यु दर और बाल कुपोषण में कमी आई थी। आईसीडीएस की प्रभावशीलता के बारे में एक अन्य अध्ययन में कुपोषण की दर में गिरावट के साथ संज्ञानात्मक विकास, बुद्धि कौशल, और शैक्षणिक ज्ञान संपादन करने के स्तर में सुधार होने का पता चला था। आईसीडीएस सेवाओं के उपयोग के बारे में 'यूनिसेफ' और झारखंड राज्य द्वारा शुरू किए 'दुलार' कार्यक्रम पर ड्युबोविट्ज के एक अध्ययन में पाया गया कि जो बच्चे 'दुलार' लाभार्थी नहीं थे उनकी तुलना में 'दुलार' लाभार्थी बच्चों आयु के हिसाब से कम वजन का

अनुपात 45 प्रतिशत कम था। इसके अलावा, 'दुलार' वाले बच्चों में स्तनपान कराने के साथ-साथ बच्चे के जन्म के एक घंटे के भीतर स्तनपान कराना, टीकाकरण आदि का अनुपात काफी अधिक पाया गया था।

आईसीडीएस की उपस्थिति के बावजूद, गंभीर तीव्र कुपोषण स्थिति (एसएएम) के प्रबंधन में कई असमानताएं व्याप्त हैं। जैसे, इंडियन पीडियाट्रिक्स में प्रसाद वी. के अनुसार एसएएम वाले 44 फीसदी बच्चे हाल की डॉक्टरी जांच के मापदंड को पूरा नहीं कर पाए थे और कई बच्चों के एसएएम होने का गलत निदान किया गया था। इंडियन पीडियाट्रिक्स में सिंह के. और अन्य के अनुसार, उत्तर प्रदेश के 12 पोषण पुनर्वास केंद्र (एनआरसी) के दो साल के डेटा की समीक्षा करते हुए, इन केन्द्रों के परिणाम बच्चों की देखभाल के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मानकों के साथ संगत पाए गए। बालकों को दस्त के उपचार के लिए ओआरएस (मौखिक पुनर्जलीकरण नमक), आयोडीनयुक्त नमक को प्रोत्साहन देने और शिशुओं, किशोरियों, गर्भवती और स्तनपान करवाने वाली महिलाओं के लिए आयरन और फोलिक एसिड सेवन को बढ़ावा देने के कार्यक्रम कुपोषण की समस्या को कम करने में सहायक रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर विटामिन-ए सप्लीमेंट कार्यक्रम के तहत 85 प्रतिशत बच्चों (प्री-स्कूली बच्चों) को शामिल करने का लक्ष्य था, लेकिन उसके सामने काफी कम बच्चों (प्री-स्कूली बच्चों) को कवर किया गया था। इसके अलावा, जिन बच्चों को कवर नहीं किया जा सका था उनके बारे में इसकी अधिक संभावना थी कि उन बच्चों की ऊंचाई उम्र की तुलना में कम हो या उम्र की तुलना में वजन कम हो। इसके साथ ही, इन बच्चों पर जन्म के समय ही या पाँच साल से कम उम्र में मृत्यु का जोखिम सवार रहता था। सेम्बा आर.डी. के अनुसार, विटामिन-ए कार्यक्रम की कवरेज और बाल मृत्यु के विपरीत संबंध के लिए विटामिन-ए कार्यक्रम की कमजोर पहुंच के बजाए बच्चों के पोषण संबंधी सभी कार्यक्रम कमजोर पहुँच अधिक उत्तरदायी है।

भारत में एसएएम का समुदाय आधारित प्रबंधन के प्रति झुकाव बढ़ता जा रहा है। एसएएम का समुदाय आधारित प्रबंधन के उपयोग में वृद्धि की जाए - हर परिवार घर पर ही अपने बच्चों का ख्याल रखे और एसएएम के अलावा शारीरिक समस्या (चिकित्सा जटिलताओं) वाले बच्चों के लिए एनआरसी आरक्षित रखने की सिफारिश की जाती है। 2009 में, डॉक्टर्स विदाउट बॉर्डर (एमएसएफ) द्वारा भारत का पहले समुदाय आधारित एसएएम प्रबंधन विकसित किया गया था और मृत्यु दर कम करने और इलाज की उंची दर हासिल करने में सफलता प्राप्त की थी।

इसी तरह, रियल मेडिसिन फाउंडेशन ने सरकार, गैर सरकारी संगठनों, व्यापार समूहों और स्थानीय समुदायों के सहयोग से 2009 में बाल कुपोषण उपचार और रोकथाम पहल शुरू की थी। इस कार्यक्रम के तहत मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा कुपोषण दर वाले 600 गांवों में एसएएम का समुदाय आधारित प्रबंधन प्रभावी साबित हुआ था।

2015 में भुवनेश्वर में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में यूनिसेफ के 'भारत के आदिवासी बच्चों को पोषण प्रदान करना' - नामक शीर्षक पर रिपोर्ट अत्यधिक दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्र में सेवाएं देने पर बल देती है। इस रिपोर्ट के निष्कर्षों के अनुसार, आदिवासी क्षेत्रों में 0-36 महीनों की आयु वाले शिशुओं के कुपोषण को रोकने के कामकाज में इस तरह के कार्य शामिल हैं: 1) 7-36 महीने के शिशुओं को सभी जरूरी पोषण सेवाएं प्रदान करना, 2) 90 प्रतिशत या अधिक वजन दक्षता, 3) समय पर पोषण की स्थिति की सूचना देना, 4) कीड़े नष्ट करना, टीकाकरण आदि निवारक उपाय और उपचार के उपाय, 5) स्वच्छता के कदम उठाना और 6) विशेष समूहों के लिए खास कामों को हाथ में लेना। माता-पिता, विशेष रूप से माता के काम के घंटों को ध्यान में रखते हुए शिशुओं के लिए संचालित बाल देखभाल केन्द्रों को चलाना आवश्यक है। विशेष रूप से जहां उम्र की तुलना में कम वजन और उम्र की तुलना में कम ऊंचाई है, ऐसे उड़ीसा के आदिवासी जिलों में इस तरह की सुविधा बहुत महत्वपूर्ण साबित होती है।

माताओं को पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता शिक्षा देना आवश्यक है। यह काम आंगनवाड़ी केन्द्रों में प्रभावी तरीके से शुरू किया जा सकता है। महिलाओं को अपने अधिकारों और उपलब्ध लाभों और सेवाओं के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। इसके अलावा, उन्हें मानव शरीर के कुछ पहलुओं, और आम बीमारियों के कारणों के बारे में मामूली ज्ञान होता है। इसके अलावा, रोजगार की सुरक्षा, जेन्डर समानता और पोषण और खाद्य सुरक्षा जैसे स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारकों के आपसी संबंध को स्वीकार करने की आवश्यकता है।

ग्लोबल न्यूट्रिशन रिपोर्ट 2016 - भारत का योगदान

- नेहा रायकर एवं पूर्णिमा मेनन

भारत में, 2006 के बाद से बाल-कुपोषण में भारी कमी आई है, लेकिन फिर भी हम विश्व पोषण स्तर से काफी पीछे हैं जो चिंताजनक बात है। भारत कुपोषण में पूरे विश्व में 132 देशों में 114वें स्थान पर है। हम कई गरीब अफ़्रीकी देशों से भी पीछे हैं। अगर स्थिति में सुधार नहीं किया गया तो हम 2030 तक घाना और टोगो जैसे अति पिछड़े हुए देशों के बराबर हो जाएंगे। हमें चीन के स्तर तक पहुचने में 2055 तक का समय लग जाएगा।

विश्व पोषण रिपोर्ट 2016 के अनुसार भारत में पोषण की स्थिति

सूचकांक	प्रतिशत	विश्व रैंक	एशिया रैंक
5 वर्ष से कम उम्र के सामान्य से कम लम्बाई वाले अविकसित बच्चे (स्टन्टिंग)	38.7	114/132	34/39
5 वर्ष से कम उम्र के सामान्य से कम वज़न वाले अविकसित बच्चे (वेस्टिंग)	15.1	120/130	35/38
5 से कम उम्र के ज्यादा वज़नदार बच्चे	1.9	11/126	6/37
एनीमिया से पीड़ित महिलाएं	48.1	170/185	45/47
स्तनपान	46.4	48/141	12/40
ज़्यादा वज़नदार वयस्क/मोटापा	22	21/190	10/47
मधुमेह से पीड़ित वयस्क	9.5	104/190	16/47

क्या 'राज्य पोषण मिशन' में वैश्विक पोषण लक्ष्यों की समय सीमा तय की गई है?

भारत में राज्यों का पोषण स्तर काफी भिन्न है। भारत को जल्द से जल्द इन लक्ष्यों को हासिल करना होगा ताकि सारे राज्यों में स्थिति समान हो सके। जिन राज्यों ने कुपोषण के प्रति प्रतिबद्धता जताई थी उनके मूल्यांकन द्वारा यह पता लगाने की कोशिश की गई कि कुपोषण दूर करने की दिशा में वे कितने अग्रसर हैं। कुल छह राज्यों - महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, गुजरात और कर्नाटक ने कुपोषण मिटाने के लिए खास सलाहकार निकाय बनाये हैं।

राज्य	5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों सामान्य से कम कद (स्टंटिंग)	5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का सामान्य से कम वज़न (वेस्टिंग)	निम्न जन्म दर	5 से कम उम्र के वज़नदार बच्चे	प्रजनन उम्र वाली एनिमिक महिलाएं	स्तनपान
उत्तर प्रदेश	हाँ	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ
महाराष्ट्र	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
ओडिशा	हाँ	हाँ	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
कर्नाटक	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
गुजरात	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
मध्य प्रदेश	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं

1. छह में से केवल दो राज्यों ने स्पष्ट, मापन योग्य, पोषण संबंधी परिणाम लक्ष्य निर्धारित किये हैं - उत्तर प्रदेश 'राज्य पोषण मिशन' और महाराष्ट्र के 'राजमाता जिजाऊ मदर चाइल्ड हेल्थ एंड न्यूट्रीशन मिशन' ने अपने एक्शन प्लान के तहत 10 सूचकांक स्थापित किये हैं। लेकिन उनके लिए मापन योग्य लक्ष्य और समय सीमा नहीं तय की गई है। वहीं गुजरात, मध्य प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों ने किसी भी तरह का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया हैं।

2. जिन राज्यों ने लक्ष्य निर्धारित किये हैं वे वैश्विक पोषण लक्ष्यों से मेल नहीं खाते। उत्तर प्रदेश ने छह में से केवल दो लक्ष्यों को ही शामिल किया है। इसमें जन्म के समय बच्चे के वज़न जैसे महत्वपूर्ण लक्ष्य छोड़ दिए गए हैं। ओडिशा राज्य ने केवल अविकसित (स्टंटिंग, वेस्टिंग) और सामान्य से कम वज़न बच्चे को लिया है और महिला एनिमिया, स्तनपान, जन्म के समय सामान्य से कम वज़न, सामान्य से अधिक वज़न जैसे लक्ष्यों को छोड़ दिया है जो वैश्विक निर्धारित लक्ष्यों में आते हैं।

3. जिन राज्यों ने लक्ष्य निर्धारित किये हैं वे पुराने आकड़ों के आधार पर बनाये गये हैं। उदाहरण के तौर पर उत्तर प्रदेश और ओडिशा राज्यों के 2014-2024 प्लान राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2005-2006) पर आधारित हैं।

सभी राज्यों को जल्द से जल्द नए आकड़ों पर आधारित रिपोर्ट तैयार करनी होगी जिससे विश्व स्तर पर स्वीकृत नए लक्ष्य सूचकांकों को समाविष्ट किया जा सके। लक्ष्य तय करना किसी भी कार्य करने की पहली सीढ़ी होती हैं जो जवाबदेही तय करती है।

उदाहरण के लिए, महिला एवं बाल विकास, यूनिसेफ और वोडाफोन ने सार्वजनिक-निजी भागीदारी के तहत कुपोषण के खिलाफ 'पोषण न्यट्रिशन' नामक राष्ट्रीय अभियान शुरू किया है। आईईसी मोबाइल इंटरनेट और ऑफ़लाइन प्रणाली के माध्यम से किया जाता है। इसी तरह, सेव द चिल्ड्रन संस्था ने आईसीडीएस और एनआरएचएम के साथ हाथ मिलाया है और राजस्थान के विभिन्न समुदायों के बच्चों में कुपोषण को कम करने का काम हाथ में लिया है। इस कामकाज के तहत अग्रिम पंक्ति के स्वास्थ्य कार्यकर्ता कुपोषण वाले संभावित बच्चों की शीघ्र पहचान करने, उन्हें उपचार केंद्रों में भेजने की व्यवस्था को मजबूत करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, यह पहल बच्चों और उनके परिवारों को स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के साथ संपर्क बनाए रखने में मदद करती है, ताकि उपचार के बाद उनकी स्थिति पर ध्यान रखा जा सके और साथ ही बच्चे के माता पिता को बच्चे को उचित आहार देने के तौर-तरीके समझा सकें।

मध्याह्न भोजन (मिड-डे मिल - एमडीएम) प्राथमिक विद्यालय के छात्रों के पोषण स्तर में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण योजना है। प्राथमिक शिक्षा को पोषक तत्वों की सहायता प्रदान करने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम (एमडीएम) के निष्पादन परीक्षण के बारे में भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की 2008 की रिपोर्ट नं. 13 के अनुसार, इस योजना की मुख्य बाधा अस्थाई राशन आपूर्ति और खराब गुणवत्ता है, इसलिए कुछ राज्यों में इस योजना का कार्यान्वयन स्वैच्छिक संगठनों को सौंपा गया है। मथुरा जिले में अक्षयपात्र फाउंडेशन द्वारा चलाए जा रहे मध्याह्न भोजन की असरकारकता के बारे में किए गए अध्ययन से यह पता चला है कि गैर सरकारी संगठन द्वारा प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को दिए जा रहे मध्याह्न भोजन और स्थानीय ग्राम पंचायत द्वारा तैयार मध्याह्न भोजन करने वाले बच्चों के विकास में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं देखा गया। इंडियन जर्नल ऑन पीडियाट्रिक्स के शर्मा ए.के. के लेख के अनुसार, एक स्वैच्छिक संगठन द्वारा प्रदान किए जा रहे मध्याह्न भोजन के मद्देनजर विटामिन ए और विटामिन डी की कमी में काफी हद तक सुधार देखा गया था। मध्याह्न भोजन योजना का लाभ केवल सरकारी प्राथमिक स्कूलों के बच्चों के लिए उपलब्ध है। बच्चों को निजी स्कूलों में भर्ती कराने की संख्या बढ़ती जा रही है, जिससे इस योजना के तहत लाभार्थी बच्चों की संख्या में हर साल कमी आ रही है। विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यूएफपी) के पायलट परियोजना के तहत चावल को आयरन से समृद्ध करके उड़ीसा राज्य के गजपति जिले की प्राथमिक स्कूलों के में मध्याह्न भोजन में परोसा गया, जिससे बच्चों में एनीमिया की दर में 20 फीसदी तक कमी आई थी जिसमें फोर्टिफाइड चावल का योगदान 6 प्रतिशत था।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (एमजीनरेगा) ग्रामीण भारत में अभाव और खाद्य असुरक्षा को खत्म करने के लिए सरकार की एक अन्य योजना है। राजस्थान के 528 परिवारों के 1,056 प्रतिभागियों का मिश्रित तरीकों से अध्ययन किया गया और लेखकों ने भी इस परियोजना का विश्लेषण किया था। इसके तहत उन्होंने जन्म के समय शिशु के कम वजन की मात्रा में कमी लाकर उम्र की तुलना में बच्चे का कम वजन और उम्र की तुलना में बच्चे की कम ऊंचाई पर एमजीनरेगा के प्रभाव के उल्लेखनीय समाधान खोजे हैं। एमजीनरेगा गर्भवती महिलाओं की पोषण से संबंधित आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है और इसी तरह, गरीब सामाजिक-आर्थिक वर्ग के नवजात शिशुओं की जन्म के समय कम वजन की समस्या को कम कर सकती है। हालांकि, तुलनात्मक रूप से बेहतर स्थिति वाले परिवारों के शिशुओं में कुपोषण को प्रभावी रूप से कम करने के लिए एमजीनरेगा को विफलता हाथ लगी है।

केंद्र सरकार ने 2013 में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए) पारित किया था। जिसके तहत दो तिहाई आबादी को लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) के माध्यम से रियायती दरों पर खाद्यान्न आपूर्ति और साथ ही गर्भावस्था और स्तनपान कराने वाली माताओं को स्तनपान की अवधि के दौरान सीधे नकद लाभ देने का प्रावधान किया गया है, ताकि माता-पिता को इस अवधि के दौरान बेहतर आहार मिल सके। हालांकि, भारत में कुपोषण कम करने में एनएफएसए की प्रभावशीलता के मूल्यांकन करने के लिए कोई अध्ययन नहीं किया गया है। छोटे बच्चों में पोषण का निम्न स्तर और संक्रमण, विशेष रूप से दस्त से संबंधित बीमारियां और तीव्र श्वसन संक्रमण (एआरआई) प्रचलित हैं। शौचालय और सफाई की कमी इसके मुख्य कारण हैं। भारत में अभी भी बहुत से लोग खुले में शौच करने जाते हैं। स्वच्छ भारत अभियान से स्वच्छता में सुधार जरूर होगा, लेकिन जल प्रणाली को दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुंचाना आवश्यक है। कुछ दुर्गम और दूरदराज के क्षेत्रों में लोगों को पानी भरने के लिए मीलों चलना पड़ता है। इस समस्या के निवारण के लिए सौर पंप के साथ पानी की टंकी का इस्तेमाल किया जा सकता है। संक्रमण और कुपोषण के बीच सीधा संबंध है, इसलिए, पोषण के स्तर में सुधार करने के लिए पानी और स्वच्छता पर ध्यान देना आवश्यक है।

संभावित नीति और कार्यक्रम विकल्प

बचपन के प्रारंभिक वर्षों में कुपोषण का मुकाबला करने के लिए और समग्र विकास में तेजी लाने के लिए आईसीडीएस आंगनवाड़ी केंद्रों के काम के घंटे बढ़ा सकती है। इस तरह, आंगनवाड़ी केन्द्रों को आंगनवाड़ी-सह-बालघर के रूप में बदला जा सकता है और माता-पिता काम की अवधि के अनुसार केन्द्रों को चला सकते हैं। दिन भर में बच्चे की देखभाल के साथ-साथ बचपन के प्रारंभिक वर्षों में उसे शिक्षा देना और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल करना आदि बातों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इसके अन्य लाभ भी हैं, जैसे माता-पिता एक साथ आराम से काम पर जा सकते हैं और अधिक कमाई कर सकते हैं जिससे जरूरत के अनुसार तथा खाने की अतिरिक्त चीजों को खरीदा जा सकता है। इसके अलावा, बड़े भाई बहन, विशेष रूप से लड़कियों को छोटे भाइयों और बहनों को संभालने के दायित्व से मुक्ति मिलने से वे स्कूल जा सकते हैं। स्वास्थ्य और पोषण के स्तर के में सुधार के लिए लड़कियों की शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जाता है, इसलिए, बालघर से सुधारात्मक परिवर्तन दिखेंगे।

आईसीडीएस के तहत उपलब्ध लाभों के बारे में जागरूकता का प्रसार, आंगनवाड़ी बच्चों को प्रवेश दिलाना, आंगनवाड़ी में बच्चों को पूरक भोजन देना, ममता दिवस पर गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली माताओं और किशोरियों को पूरक आहार देना - आदि के कामकाज में तेजी लाना आवश्यक है। इसके अलावा, इस कामकाज का समुचित निष्पादन सुनिश्चित करना चाहिए और समुदाय द्वारा, विशेष रूप से सहकारी समितियों और स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) जैसे महिला संगठनों द्वारा निगरानी करना आवश्यक है। आंगनवाड़ी की उपलब्धता में विविधता व्याप्त है। स्थानीय स्तर के कामकाज के आधार पर पाया कि दूरदराज के गांवों तक पहुंच होने के बावजूद, कई ब्लॉकों में स्थानीय मांग के सामने आपूर्ति की सुविधा में वृद्धि दर बहुत कम है। जिन जिलों में आंगनवाड़ी की पहुंच और आंगनवाड़ी के कामकाज का स्तर कमजोर हो उनकी पहचान करना और उनके कामकाज को बेहतर करने के लिए विशेष प्रयास करना आवश्यक है। गांवों में कुपोषण की समस्या दूर करने के लिए स्वयं सहायता समूहों और सहकारी समितियों जैसे स्थानीय समुदाय आधारित संगठनों के साथ-साथ पंचायतों को बढ़ावा देने की जरूरत है। उन पंचायतों को प्रोत्साहन और सम्मान देना चाहिए जो यह सुनिश्चित करती हैं कि अब गांव में कोई भी बच्चा, लड़की या औरत कुपोषण की शिकार नहीं होगी।

आईसीडीएस कार्यक्रम के प्रभावी नहीं रहने के लिए सामाजिक दायित्व का अभाव, सामाजिक - भौगोलिक बहिष्कार और गलत धारणाओं जैसे कारण जिम्मेदार हैं। इसलिए, आईसीडीएस के मूल लक्ष्यों - आहार, पोषण, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और बच्चे के पहले 1000 के दिनों में बचपन की प्रारंभिक शिक्षा देना - आदि पर जोर देना आवश्यक है। इस व्यापक दृष्टिकोण के माध्यम से बच्चों के समग्र विकास का उद्देश्य हासिल किया जा सकता है। कुपोषण के लिए कम उम्र में विवाह और घरेलू हिंसा भी जिम्मेदार है। छह महीने से छोटे बच्चे पूरी तरह से माता के दूध पर निर्भर हों, तो माता के घरेलू हिंसा का शिकार होने पर ये बच्चे मां के दूध से वंचित हो जाते हैं। नतीजतन, बच्चों को पूरक पोषण पर निर्भर रहना पड़ता है। महिलाओं और लड़कियों को संगठित करके सशक्त महिला संगठनों का गठन करके इस समस्या का हल किया जा सकता। इसके अलावा, यदि लड़कियां स्कूल जाएं और उच्च शिक्षा पूरी करें, तो लड़कियों को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के

शेष पृष्ठ 14 पर

भारत में 'सार्वत्रिक मूलभूत आय' (यूनिवर्सल बेसिक इनकम) - कार्यान्वयन की संभावनाओं को समझना

- वंदना, उन्नति द्वारा संकलित

हर साल, केंद्र सरकार का वित्त मंत्रालय, आर्थिक सर्वेक्षण नामक दस्तावेज़ जारी करता है जो देश की अर्थव्यवस्था के विकास और गतिविधियों की समीक्षा और उसका विश्लेषण करता है। आर्थिक सर्वेक्षण जनता के लिए उपलब्ध होता है और बजट सत्र के दौरान संसद में प्रस्तुत किया जाता है। जनवरी, 2017 में आर्थिक सर्वेक्षण 2016-17 जारी किया था। इसमें एक अध्याय 'ए यूनिवर्सल बेसिक इनकमः ए कन्वर्सेशन विद एंड विदिन महात्मा' था। इस अध्याय में भारत में यूबीआई की संभावनाओं बारे में जानकारी प्रदान करने का प्रयास किया गया था। यूनिवर्सल बेसिक आय राज्य (सरकार) द्वारा मासिक आधार पर सभी व्यक्तियों को बिना शर्त किया जाने वाला नकद हस्तांतरण है। फिनलैंड जैसे देश में यह प्रणाली लागू हो चुकी है। वहीं नीदरलैंड और कनाडा जैसे देशों ने भी यह प्रयोग करने की घोषणा की है। (इंडियन एक्सप्रेस, 31 जनवरी, 2017)

भारत में, यूबीआई को देश में गरीब लोगों के लाभ के लिए गहन और जटिल प्रणालियों में हो रहे भ्रष्टाचार और अनुचित आवंटन जैसी समस्याओं के रूप में देखा जाता है। भारत में यूबीआई की व्यावहारिक संभावना के बारे में इस अध्याय में चर्चा की गई है। इस अध्याय के कुछ अंश संक्षप्ति में नीचे दिये गए हैं:

'ए यूनिवर्सल बेसिक इनकमः ए कन्वर्सेशन विद एंड विदिन महात्मा का सारांश - वित्त मंत्रालय की अर्थव्यवस्था के वार्षिक सर्वेक्षण में प्रकाशित

यह लेख मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद सुब्रमण्यम द्वारा जनवरी 2017 में प्रकाशित किया गया था। 'यूनिवर्सल बेसिक इनकम (यूबीआई) - इस विचार पर आधारित है कि न्यायपूर्ण समाज द्वारा हर व्यक्ति को (जिस पर वह निर्भर रह सकता है) न्यूनतम आय का आश्वासन देना आवश्यक है। इस आय को बुनियादी वस्तुओं और गौरवप्रद जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक सामग्री और वातावरण प्रदान करना चाहिए। अन्य कई अधिकारों की तरह, यूनिवर्सल बेसिक आय बिना शर्त और सार्वभौमिक हैः इस सिद्धांत/विचार के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक होने के नाते अपनी जरूरतों को पूरा करने लायक आय प्राप्त करने का अधिकार है। यह तर्क दिया जाता है कि बेसिक इनकम (बुनियादी आय) का वैचारिक आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति मजबूत हो जाने से प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपने हिस्सेदारी प्राप्त करने के लिए सक्षम हो जाएगा और इस तरह गरीबी का स्तर कम होगा। गरीब के पास अपने स्वयं के आर्थिक फैसलों के लिए एक माध्यम होगा। इस आय के मद्देनजर स्वास्थ्य, आय और अन्य चुनौतियों के सामने सुरक्षा उपलब्ध होगी। भुगतान का हस्तांतरण होने के कारण बैंक खातों का उपयोग बढ़ेगा, जिससे वित्तीय समावेशन होगा। यूबीआई नागरिकों को राज्य (सरकार) के साथ लोगों की स्वतंत्रता को सीमित करने वाले शासन और उपभोक्तावादी संबंधों से मुक्त करेगी। यह भी तर्क दिया जाता है कि यूबीआई से व्यक्तियों को कार्यस्थल पर शोषणयुक्त स्थिति को स्वीकार नहीं करना पड़ेगा। इसके कारण गैर-शोषणयुक्त क्रय शक्ति का निर्माण होगा, जिससे रोजगार के अवसर पैदा होंगे। गारंटीशुदा आय के कारण रोजाना बुनियादी जीवन जीने के लिए जरूरत को पूरा करने का दबाव कम हो जाएगा। इसके साथ ही प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि होगी। इसके अलावा, भ्रष्टाचार और अपर्याप्त आवंटन की वजह से गरीबी की समस्याओं को व्यापक रूप से अनदेखा किया जाता था, उस स्थिति में सुधार होगा।

रिपोर्ट का भाग-3 यूबीआई के खिलाफ वैचारिक मामला खड़ा करता है। एक अनुमान के अनुसार, परिवार विशेष रूप से घर के पुरुष सदस्यों द्वारा इस अतिरिक्त आय को बेकार गतिविधियों में खर्च कर देने की संभावना है। यह भी हो सकता है कि न्यूनतम आय गारंटी के कारण लोग आलसी हो जाएं और श्रम बाजार से दूर हो जाएं। परिवार में यूबीआई वितरण पर लैंगिक नियम बन सकते हैं और इसलिए, यूबीआई को खर्च करने पर पुरुषों का नियंत्रण रहने की संभावना है। बहरहाल, यह अन्य वस्तुओं के

हस्तांतरण के मामले में नहीं भी हो। भुगतान का हस्तांतरण करने के लिए (विशेष स्थिति को छोड़कर) यूबीआई के लिए बैंक खाता होना अनिवार्य है। गरीब वर्ग तक वित्तीय पहुंच की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, यूबीआई बैंकिंग प्रणाली पर विशेष जोर डाल सकता है। अमीर व्यक्तियों को हस्तांतरण के प्रावधान के मद्देनजर विरोध के स्वर उठ सकते हैं क्योंकि गरीबों के लिए समता और राज्य कल्याण के विचार के लिए यह तुरुप का इक्का साबित हो सकता है। इसके अलावा, बाजार जोखिम का सामना करने का भी खतरा है। खाद्य पदार्थों की सब्सिडी अस्थिर बाजार की कीमतों पर निर्भर नहीं होती, जबकि नकद हस्तांतरण बाजार की अस्थिरता से काफी प्रभावित हो सकता है।

सार्वजनिक कार्यक्रमों का कमजोर कार्यान्वयन हमेशा चिंता का विषय रहा है। बजट 2016-17 के अनुसार करीब 950 केंद्रीय और केन्द्र प्रायोजित उप-योजनाएं लागू हैं और उसमें देश के सकल घरेलू उत्पाद का हिस्सा लगभग 5 प्रतिशत है। बजट आवंटन की कुल राशि में शीर्ष 11 परियोजनाओं का हिस्सा लगभग 50 प्रतिशत है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) एक व्यापक कार्यक्रम है और जिसके बाद यूरिया सब्सिडी और एमजीनरेगा योजना आती है। पिछले साल के सर्वेक्षण दस्तावेज के अनुसार, अधिकांश केंद्रीय योजनाएं कम से कम 15 साल से चल रही थी और उनमें से 50 प्रतिशत योजनाएं 25 साल से अधिक पुरानी थी। यूबीआई विचार के मद्देनजर इनमें से कई योजनाओं को बदलना होगा। इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता में कई बाधाएं उत्पन्न हुई हैं। इसके लिए जिलों में संसाधनों का अनुचित आवंटन - जिसमें गरीब और वंचित जिलों को धन का सबसे कम हिस्सा मिलता है, वास्तविक (जिनको वास्तव में लाभ मिलना चाहिए) लाभार्थियों का बाकी रह जाना, आदि कारण जिम्मेदार हैं। रिपोर्ट में यह तर्क दिया गया है कि धन हस्तांतरण के लिए बैंक खाता के अनिवार्य प्रावधान से पास में बैंक की कई नई शाखाएं खुलेंगी, जिससे आर्थिक समावेशन में सुधार होगा। इसके अलावा, यूबीआई की वजह से आय वृद्धि के कारण ऋण सुविधाएं प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं में कमी आएगी।

जो व्यक्ति पात्र या योग्य नहीं है उसे अलग रखने के लिए चार मार्गों का सुझाव दिया गया है। पहले उपाय के अनुसार, पात्रता नहीं रखने वाले व्यक्ति को वाहन या एयर कंडीशनर या निश्चित सीमा से अधिक बैंक बैलेन्स आदि प्रमुख संपत्ति के स्वामित्व के आधार पर परिभाषित किया जाएगा। दूसरा, रसोई गैस सब्सिडी को छोड़ने की योजना की ही तरह लोगों को 'कुछ लाभ का परित्याग' करने का विकल्प दिया जाएगा। तीसरा, स्वयं लक्ष्य विधि प्रस्तावित की गई है, जिसमें यूबीआई का लाभ लेने के लिए लाभार्थियों को नियमित रूप से अपने को प्रमाणित करवाना होगा। लाभार्थियों को वर्तमान समय में मिलने वाले लाभों के स्थान पर यूबीआई को चुनने का विकल्प होगा।

सेवा और यूनिसेफ द्वारा मध्य प्रदेश में बिना शर्त नकद हस्तांतरण पायलट परियोजना के निष्कर्ष

बेसिक इनकम अर्थ नेटवर्क (बीआइईएन) के संस्थापक प्रोफेसर गॉय स्टेंडिंग ने 2011 में भारत में दो पायलट अध्ययन किए थे। इस अध्ययन के लिए धन यूनिसेफ द्वारा प्रदान किया गया था और उन्होंने मध्य प्रदेश में सह-निर्देशक के रूप में सेवाएं प्रदान की थी। भारत में बिना शर्त नकद हस्तांतरण पर कुछ समय से चर्चा हो रही है। नकदी हस्तांतरण के बारे में गहन चर्चा के बावजूद, भारत में इस तरह के नकद हस्तांतरण के परिणामों के बारे में थोड़े विश्वसनीय सबूत मिले थे। बिना शर्त वाले नकद हस्तांतरण के परिणामों के बारे में काफी कम जानकारी थी। विश्वसनीय सबूत प्राप्त करने के लाभार्थियों के स्वयं के अनुभव प्राप्त करने के लिए यूनिसेफ और स्वाश्रयी महिला एसोसिएशन (सेवा) ने मध्य प्रदेश के गांवों में बिना शर्त नकद हस्तांतरण का प्रयोग शुरू किया था। सभी व्यक्तियों को हर महीने एक बुनियादी आय दी जाती है - यह इस प्रयोग की रूपरेखा का आधार था। आम तौर पर, बुनियादी आय को - व्यक्तियों को बिना शर्त के, उनके अधिकार आधारित नियमित रूप से भुगतान की जाने वाली राशि के रूप में परिभाषित किया गया है। अध्ययन के दौरान निवासी के रूप में पंजीकृत हर किसी को यह आय मिल रही थी। गैर-आदिवासी गांवों के लिए शर्त यह थी कि वहां के निवासियों का बैंक खाता होना चाहिए। परियोजना के तहत सभी व्यक्तियों - अमीर, गरीब, बुजुर्ग व्यक्तियों, महिलाओं, बच्चों (यदि बच्चे की आयु कम से कम 18 वर्ष है, तो उसकी राशि का भुगतान माता को किया गया था), विकलांग व्यक्तियों, वंचित जाति समूहों - आदि सहित (संबंधित गांव के) सभी को एक साल के लिए हर महीने भुगतान किया गया था।

इस गांव से पूरी तरह से अलग क्षेत्रों, आदिवासी गांवों के लिए एक अलग प्रयोग किया गया था। इसका उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना था कि लोग अपने स्वयं के निर्णय लेने में सक्षम हैं या नहीं।

यह अध्ययन दो आदिवासी गांवों और 20 गैर-आदिवासी गांवों में किया गया था। इनमें से 10 गांव सेवा के संचालन में थे। सेवा संचालित गांव वे हैं जहां पहले कामकाज किया जा चुका है। एक आदिवासी गांव के 6000 व्यक्तियों को 29 से अधिक महीनों के लिए, हर वयस्क को 200 रुपये और हर बालक को 100 रुपए की मामूली और बिना शर्त राशि का भुगतान किया गया था। इसके बाद इस राशि को क्रमशः 300 रु. और 150 रुपये किया गया था। इस मूलभूत राशि का भुगतान सार्वजनिक वितरण प्रणाली से सब्सिडी वाले खाद्य पदार्थों आदि, जैसी सार्वजनिक सेवाओं में से किसी के स्थान पर नहीं किया गया था।

दो साल के अंत में प्रमुख निष्कर्ष

बेसिक आय प्राप्त करने वाले गांवों में बुनियादी परिस्थिति में सुधार देखा गया था। गांव में स्वच्छता में सुधार देखने को मिला था और विशेष रूप से आदिवासी गांवों के लिए पीने के पानी की सुविधा के लिए निवेश किया गया था। इसके अलावा, खाना पकाने और ऊर्जा स्रोतों के लिए बिजली/प्रकाश व्यवस्था में सुधार हुआ था। आदिवासी गांवों में परिवार की संपत्ति के स्वामित्व में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई थी। इस हस्तक्षेप के छह महीने के बाद आदिवासी और गैर-आदिवासी दोनों गांवों में खाद्यान्न की उपलब्धता 52 प्रतिशत से बढ़कर 78 प्रतिशत हो गई थी। निर्धारित आयु में सामान्य वजन के मानदंडों के तहत लड़कियों में 25 प्रतिशत सुधार देखा गया, जिसमें आदिवासियों के परिवारों में अधिक सुधार देखा गया। परिवारों की खरीदने की क्षमता में भी सुधार देखने को मिला था। नतीजतन, उनकी भोजन सामग्री में गुणात्मक परिवर्तन आया था। यह जानना दिलचस्प था कि शराब जैसे व्यसन पर खर्च नहीं किया गया था। लोगों द्वारा नियमित दवा का खर्च वहन करने के कारण उनके स्वास्थ्य में भी सुधार दर्ज किया गया था। बुनियादी आय के कारण लोग वांछित स्वास्थ्य सेवा का चयन कर सकते थे और समय पर इलाज करवाने का निर्णय ले सकते थे। वे बुनियादी आय के भुगतान के बाद स्वास्थ्य व्यय के लिए ऋण लेने के दुष्चक्र से छूट गए थे। सामान्य प्रयोग के अंत में, सेवा संचालित गांवों (55 प्रतिशत) की तुलना में बुनियादी आय प्राप्त करने वाले गांवों (46 प्रतिशत) में अस्पताल के खर्च को पूरा करने हेतु लिए जाने वाले ऋण में कमी आई थी। शाला में प्रवेश के मामले में, विशेष रूप से, सेवा संचालित गांवों में सुधार देखा गया था। इसके अलावा, वर्दी, जूते और पुस्तकों जैसे स्कूल के सामान के भी खर्च में वृद्धि हुई थी। शाला में प्रवेश में वृद्धि होने से बाल मजदूरी की मात्रा में भी कमी आई थी। इसके अलावा, स्थलांतरण के रूप में भी परिवर्तन आया था। श्रम के लिए पलायन के बजाय स्कूल के लिए पलायन किया गया था। गांवों में उत्पादक गतिविधियों में वृद्धि हुई, जिससे आय में स्थायी बढ़ोतरी हुई थी। छोटे किसान दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करने के बजाय अपने खेतों में निवेश करने के लिए अपने खेतों में अधिक समय दे पाते थे और साथ ही दूसरी गतिविधियां भी कर सके थे। बुनियादी आय प्राप्त गांवों में पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी होने के बारे में पता चला था। इसके लिए व्यक्तिगत खाते और व्यक्तिगत हस्तांतरण के कारण वित्तीय मामलों में महिलाओं का नियंत्रण मजबूत होने वाले कारण जिम्मेदार थे। श्रम कार्यों में महिलाओं की भागीदारी में 16 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी, जबकि पुरुषों का अनुपात पूर्ववत था। प्रायोगिक अध्ययन के अंत तक नकद हस्तांतरण प्राप्तकर्ता 73 प्रतिशत परिवारों के ऋण में कमी आई थी। इसके अलावा, परिवार ऋण प्राप्त करने के कठोर रूपों की बजाए आसान रूपों की तरफ प्रवृत्त हुए थे। इतना ही नहीं, बुनियादी आय के मद्देनजर परिवार कई सरकारी योजनाओं से लाभ प्राप्त करने में सक्षम हुए थे। हाथ में नकदी होने से, परिवार राशन की दुकानों से खाद्यान्न खरीद सकते थे, वाहन का उपयोग करके सरकारी अस्पतालों में जा सकते थे, बैंक खाता खोल सकते थे।

यूनिवर्सल बेसिक आय के प्रति कुछ सवाल भी खड़े हुए हैं। यूबीआई के तहत दी जाने वाली बुनियादी आय निर्धारित करने और क्या सरकार इस तरह की बड़ी राशि को वहन कर पाएगी, इस पर व्यापक रूप से चर्चा की जा रही है। आलोचकों का कहना है कि सभी भारतीयों (तेंदुलकर समिति द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा के अनुसार) को गरीबी रेखा के बराबर आय प्रदान करने वाली यूबीआई बजट की कमी की वजह से व्यावहारिक रूप से संभव नहीं लगती। आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट को सबके लिए अपनाने के बजाए (अपवर्जन मानदंडों के द्वारा अयोग्य सदस्यों को हटाकर) लक्षित समूहों को निर्धारित करने की संभावना को दर्शाता है। इसकी वजह से लक्षित समूहों को निर्धारित करने की समस्या उत्पन्न होगी, जैसे योग्यता वाले सदस्य बाहर हो जाएंगे और अयोग्य सदस्यों को शामिल कर लिया जाएगा।

लक्षित समूहों को निर्धारित भी कर दिया जाए, तो काफी बड़ी आबादी को बुनियादी आय उपलब्ध कराने से संबंधित खर्च वर्तमान

सरकारी खर्च के मुकाबले बहुत अधिक हो सकता है। पूर्व वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम ने अनुमान लगाते हुए सुझाव दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रति वर्ष 14,000 (या 1200 रु. प्रतिमाह) बुनियादी आय दी जाए, तो कुल खर्च लगभग 6,93,000 करोड़ होगा, जो 2016-17 बजट का लगभग 35 प्रतिशत है। इतनी बड़ी राशि देना सरकार के लिए संभव नहीं है। इसके लिए, छोटी राशि दी जाए, लाभ के पात्र समूहों के मापदंड ठीक से तय किए जाएं आदि कदम उठा सकते हैं, लेकिन वे बुनियादी आय के केंद्रीय विचार के अनुरूप नहीं हैं।

यह तर्क भी दिया जाता है कि परिवार, विशेष रूप से पुरुष सदस्य इस अतिरिक्त आय को बेकार गतिविधियों में खर्च कर देंगे। परिवार में यूबीआई के वितरण पर लैंगिक मानकों के प्रभावी रहने की पूरी संभावना है। इसलिए, यूबीआई के खर्च पर पुरुषों का नियंत्रण रहने की संभावना है। ऐसा किसी अन्य तरह के हस्तांतरण में सही ना भी हो। देश के वर्तमान विकास संबंधी वित्तीय संरचना के कारण कई लोगों को यूबीआई राशि प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है। विश्व बैंक के अनुसार, भारत में 100,000 वयस्कों के लिए सिर्फ 20 एटीएम हैं। जबकि दक्षिण अफ्रीका में यह अनुपात 70, ब्राजील में 114 और ब्रिटेन में 132 एटीएम हैं। 2014 में, जन धन योजना के तहत 26 करोड़ बैंक खाते खोले जाने के बावजूद, भारत में एक तिहाई वयस्कों के बैंक खाते नहीं हैं। यूबीआई के मद्देनजर वर्तमान बैंकिंग प्रणाली के बोझ में अत्यधिक वृद्धि होगी।

सरकार एमजीनरेगा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसे अन्य महत्वपूर्ण खर्च में कटौती करके यह सेवा प्रदान कर सकती है। यह माना जाता है कि इससे लाभार्थियों की वास्तविक आय कम हो जाएगी क्योंकि खाद्य पदार्थों की कीमतों और अन्य जरूरतों के भाव बढ़ने से खर्च भी बढ़ेगा। खाद्य सब्सिडी को हटाने के दूरगामी प्रभाव होंगे। सरकार किसान की उपज खरीदना बंद कर देगी। इससे किसान न्यूनतम निर्धारित मूल्य पर सरकार को अपनी उपज नहीं बेच सकेंगे।

अब सवाल उठता है कि क्या किसान प्रोत्साहन मूल्य निर्धारण के अभाव में पर्याप्त अनाज-दालें पैदा करना जारी रखेंगे? अनाज बाजार देश के सभी भागों में प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकेगा, इसके लिए राज्य संचालित वितरण नेटवर्क की आवश्यकता होती है। यूबीआई समर्थक भी उसे परिवहन, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, आदि सार्वजनिक प्रावधानों के विकल्प के रूप में स्वीकार नहीं करते। इन स्थितियों में लोगों को स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी अपनी जरूरतों के लिए निजी संस्थाओं के पास जाना होगा और इन सेवाओं के लिए अधिक कीमत चुकानी होगी, निजी क्षेत्रों के हितों के अधीन रहना होगा।

यहाँ चिंता का प्रमुख विषय यह है कि सरकार नकद हस्तांतरण को महत्वपूर्ण सार्वजनिक सेवाओं को हटाने के विकल्प के रूप में देख रही है और नागरिकों के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के अपने संवैधानिक कर्तव्य से पीछे हट रही है। ■

पृष्ठ 10 का शेष

लिए लड़कों की ही तरह प्रोत्साहित किया जाए, छोटी उम्र में शादी करने की परंपरा को खत्म किया जाए और घरेलू हिंसा को बर्दाश्त नहीं किया जाए तो इस समस्या को दूर किया जा सकता है। लड़के और युवक लड़कियों और युवतियों के नजरिए और व्यवहार में परिवर्तन को प्रभावित करने में मदद करें, तो इस स्थिति में परिवर्तन आ सकता है और पोषण के स्तर पर भी उसका सकारात्मक प्रभाव दिखाई देगा।

इसलिए, महिलाओं और किशोरियों के कल्याण के लिए प्रयासों को तेज करना आवश्यक है। जैसा कि पहले बताया गया है, लड़कों और युवकों को महिलाओं और लड़कियों की भलाई सुनिश्चित करने वाली प्रक्रियाओं का हिस्सा होना चाहिए। इसके माध्यम से ही, हम किशोरियों में एनीमिया, शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण की कमजोर उपलब्धता, कम उम्र में शादी और अन्य सांस्कृतिक और लैंगिक बाधाओं को दूर कर सकेंगे। लड़कियों और महिलाओं के पोषण और स्वास्थ्य के स्तर में सुधार करने के लिए उपरोक्त अनुसार सामाजिक-आर्थिक बाधाओं के अतिरिक्त, अक्सर आने वाली आपदाओं, पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियां भी रही हैं। भारत के अधिकांश किसानों की पैदावार बारिश पर निर्भर रहती है। जलवायु परिवर्तन की वजह से अक्सर आने वाली प्राकृतिक आपदा, मानव सर्जित आपदाओं, आदि जैसी विपरीत स्थिति में भी समाज के कमजोर वर्ग को आकस्मिक नुकसान न हो और राहत मिले इसके लिए बीमा और जोखिम दूर करने के अन्य उपाय करने आवश्यक हैं। ■

स्त्री-पुरुष समानता की चुनौतियाँ (जेन्डर चैलेन्जेज)

यह लेख 'बीना अग्रवाल' की पुस्तक 'जेन्डर चैलेन्जेज' की राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर केरोलिन इलियट द्वारा की गई समीक्षा पर आधारित है। यह 'इकोनोमिक एन्ड पोलिटीकल वीकली' अंक 44-45, 2016 में प्रकाशित हुआ था। इस लेख को उन्नति के **जंयत लायेक** द्वारा यहाँ संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है।

'जेन्डर चैलेन्जेज' शीर्षक के तहत बीना अग्रवाल द्वारा लिखी गयी पुस्तक के तीन भाग एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। उसमें बीना अग्रवाल के 1981 से 2011 के बीच प्रकाशित लेखों में से चयनित लेखों को शामिल किया गया है। इनमें ग्रामीण और और कृषि विकास, भूमि और संपत्ति के अधिकार और सामान्य लाभ (या अधिकार) प्राप्त करने वाले मुद्दों को जेंडर समानता के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। बहरहाल, यह उनका संपूर्ण योगदान नहीं है। इसके अलावा, उन्होंने नौ पुस्तकें और 82 लेख प्रकाशित किए हैं।

कृषि और तकनीकी

इन दिनों, कृषि गतिविधियों के लिए आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल में वृद्धि हुई है। तकनीकी विकास के साथ कृषि उत्पादकता और आय में भी काफी वृद्धि हुई है। परंतु इसके साथ-साथ, खेती में तकनीकी परिवर्तन का महिलाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इस किताब के लेखों में एशिया और अफ्रीका की महिलाओं पर कृषि आधुनिकीकरण के प्रभाव का वर्णन किया गया है। श्रम के उपयोग पर प्रौद्योगिकी का जो प्रभाव पड़ता है, उसका उन्होंने गहराई से विश्लेषण किया है।

महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने वाली विभिन्न गतिविधियों के लिए प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होता रहा है। हालांकि, जेन्डर के आधार पर श्रम के प्रकारों का विभाजन हुआ है। उनका कहना है कि खेती कार्य के मशीनीकरण के कारण महिला श्रमिकों का विस्थापन होता है। उनकी राय में, यह उपकरण के प्रकार पर निर्भर करता है। जैसे, खेत जोतने के लिए ट्रैक्टर का प्रयोग किया जाता है, लेकिन इस काम में महिलाओं का विस्थापन नहीं होता, क्योंकि जुताई के काम में उनकी भागीदारी नहीं होती। दूसरी ओर, ट्यूबवेलों द्वारा सिंचाई करने के कारण महिला श्रमिकों की मांग बढ़ी है। क्योंकि, इस यंत्रीकरण की वजह से अतिरिक्त फसलें उगाई जा सकती हैं, जिसके लिए अधिक महिला श्रमिकों की आवश्यकता होती है। हालांकि, थ्रेशर और कंबाइन्ड हार्वेस्टर (कटाई मशीन) के उपयोग से महिला एवं पुरुष श्रमिकों का विस्थापन हो सकता है।

अभिनव पहल और विस्तार के बारे में अग्रवाल का कहना है कि विस्तार का आधार तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक लक्षणों पर निर्भर करता है। अभिनव पहल समुदाय की जरूरतों के साथ और लाभों के बराबर वितरण के साथ संगत नहीं है, तो उस अभिनव पहल के लिए कोई सहयोग नहीं मिलेगा। सहयोग प्राप्त करने के लिए सामाजिक समानता होना आवश्यक है। इसलिए, समग्रतया विस्तारवादी प्रक्रिया अपनानी चाहिए। अंतिम उपयोगकर्ता के उपयोग के लिए नई तकनीक तैयार करते समय या अपनाते समय उनकी भागीदारी होना आवश्यक है।

महिलाओं के काम का मापन

बीना अग्रवाल का तर्क है कि कार्य के स्वरूप की व्याख्या में हमेशा पूर्वाग्रह रहने से कार्य की परिभाषा को फिर से स्पष्ट करना आवश्यक है। वे महिलाओं की कम जन्मदर, महिलाओं के काम की उपेक्षा और शादी के व्याख्यात्मक कारकों पर चर्चा करने की पहल करने वाले प्रमुख विद्वानों में शामिल हैं। भारतीय दृष्टिकोण के संदर्भ में, हम जानते हैं कि जनगणना और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण में महिलाओं के उत्पादक कार्यों पर कभी भी ध्यान नहीं दिया जाता। लोगों को मानना है कि महिलाओं के कार्यों, विशेष रूप से घर के कार्यों के लिए कोई धन नहीं मिलता इसलिए उन्हें उत्पादक कार्यों की सूची में नहीं रखा जा सकता। सर्वेक्षण के दौरान भी, महिलाओं के काम से संबंधित सवालों के जवाब भी पुरुष ही देते हैं। इस कारण से महिलाओं के काम को तुच्छ मानने और शारीरिक श्रम में महिलाओं की कम भागीदारी एक समस्या बनी हुई है।

काम की प्रकृति को नए सिरे से परिभाषित करने की बात करते समय बीना अग्रवाल का तर्क है कि महिलाओं के लिए रोजगार गतिविधियों और बिना रोजगार वाली गतिविधियों दोनों प्रकार के कार्यों को शामिल करना चाहिए। इसके साथ महिलाओं के कामों को परिभाषित करते समय घरेलू और गैर-घरेलू कार्यों के बीच ठोस अंतर कर लेना चाहिए। परिभाषा के विस्तार के दौरान, श्रम के समय-उपयोग अध्ययन में निवेश को बढ़ावा देना शामिल है। इस

कदम से परिवार और व्यापक अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान का मूल्यांकन करने के विभिन्न तरीकों को बढ़ावा मिलेगा। इसके लिए अधिक वित्तीय प्रावधान और लागत की आवश्यकता है। हालांकि, सही नीति बनाते समय लैंगिक वर्गीकृत जानकारी पर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ मौजूदा जानकारी का उपयोग करके लागत को कम कर सकते हैं। महिलाओं के काम की उत्पादकता का मूल्यांकन करने में विशेषज्ञ भी उदासीनता दिखाते हैं। पुरुष मानते हैं कि महिलाएं कम कुशल होती हैं, इसलिए उनकी मजदूरी हमेशा पुरुषों की तुलना में आधी या पौनी होती है। इस प्रकार, श्रम बाजार भी सीमित रहता है और जेन्डर भेदभाव पर आधारित आर्थिक प्रभाव महिलाओं की मजदूरी दर पर भी पड़ता है।

जेन्डर विश्लेषण को वर्ग द्वारा विभाजित करना चाहिए। क्योंकि गरीब महिलाएं इस्तेमाल प्रौद्योगिकी का लाभ प्राप्त कर सकती हैं और संपन्न परिवार की महिलाओं को खेती में समान तकनीक के इस्तेमाल से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। उदाहरण के लिए, धान की खेती में अधिक उपज पाने के लिए विविधतापूर्ण तकनीकी का इस्तेमाल करने से गरीब महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, जबकि संपन्न परिवार की महिलाएं प्रतिष्ठा के कारण शारीरिक श्रम नहीं करती। शारीरिक श्रम छोड़ने के बावजूद, उनके (घरेलू) काम तो जारी रहते हैं, लेकिन वे दिखते नहीं हैं, इसलिए उन्हें महत्व नहीं दिया जाता है। इस प्रकार, महिलाएं अपनी क्रय शक्ति खो देती हैं।

संपत्ति, परिवार और हैसियत

बीना अग्रवाल का लेखन सैद्धांतिक परिवर्तन के संदर्भ में है। परिवार में महिलाओं की हैसियत गैर-उत्पादक होती है और परिवार की संपत्ति में उनका कोई अधिकार नहीं होता। महिलाओं का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। इसके अलावा, वे इन अधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम भी नहीं होती हैं। 'ए फील्ड ऑफ वन्स ओन' पुस्तक में बीना अग्रवाल संपत्ति का स्वामित्व होना और घरेलू हिंसा का खतरा कम होना - इन दोनों स्थितियों के बीच संबंध बताती हैं। संपत्ति में महिलाओं का स्वामित्व अधिक हो तो परिवार के अंदर और बाहर महिलाओं को अपने स्वयं के हितों की रक्षा करने के लिए ताकत मिलती है। वे तर्क देती हैं कि केवल मुख्य धारा के विद्वान ही नहीं बल्कि वामपंथियों और मानव विज्ञानियों ने भी संपत्ति पर महिलाओं के अधिकारों की अनदेखी की है। वामपंथियों का मुख्य सैद्धांतिक विचार संपत्ति के निजी स्वामित्व को समाप्त करना है। हालांकि, स्वामित्व में जेन्डर भेदभाव की तरफ उन्होंने आंखें मींच ली हैं। दूसरी ओर, मानवविज्ञानियों द्वारा बुनियादी स्थान पर हमेशा महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति के पीछे सांस्कृतिक कारणों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। भूमि प्राप्त करने के अधिकार का प्रावधान होने के बावजूद उसके बारे में उलझन पैदा करके महिलाओं को नजरअंदाज किया जाता है। इसके अलावा, संस्कृति और गैर-उत्पादक गतिविधियों के नाम पर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। अग्रवाल का तर्क है कि पुरुषों के साथ संयुक्त स्वामित्व के प्रावधानों के स्थान पर, भूमि पर और भूमि उपज पर महिलाओं के स्वतंत्र स्वामित्व और नियंत्रण के लिए एक विशेष प्रावधान हो, ऐसी व्याख्या की जानी चाहिए।

परिवार में संसाधनों के असमान वितरण के मद्देनजर परिवार के बच्चों और महिलाओं को वंचित कर दिया जाता है, भले ही वे संपन्न परिवार के क्यों ना हों। इसके अलावा, तलाक, पुरुषों का शहरी क्षेत्रों में पलायन और वैधव्य जैसे अन्य कारकों के कारण भी महिलाओं को वंचितता की स्थिति का सामना करना पड़ता है। खेतिहर समाज में भूमि एक बहुत ही महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन है। यह महिलाओं में सुरक्षा की भावना पैदा करता है। इसके अलावा, उसमें गैर-खेतिहर आय की तुलना में अधिक स्थिरता देखने को मिलती है। धार्मिक भेदभाव की तुलना में सांस्कृतिक कारक अधिक मजबूत होते हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर-पश्चिम भारत में हिंदू महिलाओं के अधिकार दक्षिण भारतीय महिलाओं की तुलना में उसी क्षेत्र (उत्तर पश्चिमी भारत) की मुस्लिम महिलाओं से ज्यादा मिलते-जुलते थे। इसके अलावा, मातृ सत्तात्मक समुदायों में, जहां महिलाओं को संपत्ति का अधिकार मिलता है, वहाँ भी संपत्ति का लेनदेन पुरुष ही करते हैं। केरल के आंकड़े बताते हैं कि घर या जमीन के स्वामित्व वाली महिलाओं का घरेलू हिंसा का शिकार होने का अनुपात कम है। जमीन के स्वामित्व के मद्देनजर महिला का सशक्तिकरण होता है, महिलाओं की व्यक्तिगत गतिशीलता बढ़ती है और वे समाज में प्रचलित सत्तात्मक संबंधों को चुनौती देने में सक्षम हो पाती हैं।

कानून और विरासत

'कृषि भूमि में महिलाएं और उनके कानूनी अधिकार' नामक लेख में बीना अग्रवाल का कहना है कि भारतीय महिलाओं के उत्तराधिकार के अधिकार सीमित है। इसके अलावा, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के बाद भूमि और अचल संपत्ति के स्वामित्व में कानूनी असमानता व्याप्त हैं। स्वतंत्रता के बाद, धर्म, क्षेत्र और संपत्ति के

रूपों के आधार पर विरासत से संबंधित कानूनों को संशोधित किया गया है। जमीन को अन्य संपत्तियों की तुलना में अलग प्रकार की संपत्ति माना जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक राज्य में जमीन के स्वामित्व के बारे में अलग-अलग कानून हैं। हिन्दू उत्तराधिकार कानून में परिवर्तन करने में इस लेख ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। नतीजतन, पुरुषों और महिलाओं को संयुक्त और व्यक्तिगत संपत्ति में विरासत का समान अधिकार है, उन्हें संपत्ति देने का समान अधिकार है, और उसमें रहने या माता-पिता के घर अपने हक की मांग करना - आदि संशोधन किए गए थे।

2005 के सुधारों से पहले, उत्तर भारत में उत्तराधिकार कानून पूरी तरह से पुरुषों के पक्ष में था। इतना ही नहीं, पुरुष वारिस नहीं होने पर ही विधवा को वारिस बनाने की अनुमति दी जाती थी और वह भी उसके जीवनकाल के दौरान ही रहता था। उसके बाद, भूमि का अधिकार पुरुष सदस्यों को मिलता था। दक्षिण भारत में महिलाओं का अपनी भूमि पर स्वतंत्र नियंत्रण है। जमीन को परिवार या रिश्तेदारों के बीच ही रखने के लिए एक पारंपरिक प्रणाली है। इसी कारण से, दक्षिण भारत में चचेरे भाइयों और बहनों के बीच विवाह प्रचलित है। ऐसा करने से भूमि का स्वामित्व परिवार में ही रहता है। इसके अलावा, तलाक के मामले में भाई की मदद मिलती रहे इसके लिए महिलाएं अपने भाई से उत्तराधिकार में अपने अधिकारों का दावा नहीं करती। इसलिए, संपत्ति के अधिकार के संबंध में परिवार की बेटियां सबसे अधिक वंचित रहती हैं।

समकालीन आंदोलन का ध्यान विरासत और संपत्ति के स्थान पर सशक्तिकरण, महिलाओं के खिलाफ हिंसा, लघु ऋण, आदि जैसे मुद्दों पर केन्द्रित रहा है। भूमि अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनी प्रावधानों की जांच करते समय पता चलता है कि महिलाओं के लिए भूमि के तीन स्रोत हैं - विरासत, राज्य और बाजार। इसके अलावा, वे कहती हैं कि संवैधानिक प्रावधानों की नौवीं अनुसूची जेन्डर असमानता के आधार पर भूमि सुधार कानून को चुनौती देने से रोकती है। उनकी राय में, महिलाओं के पास स्वयं भूमि खरीदने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। सरकार भूमि विहीन लोगों को भूमि प्रदान करती है, लेकिन महिलाएं हमेशा उससे वंचित रह जाती हैं। इसके उपाय के रूप में, महिलाओं का समूह मिलकर जमीन खरीद सकता है या किराए पर ले सकता है और उसमें अपने तरीके से खेती की जा सकती है। समाज में प्रचलित सामाजिक मानदंड महिलाओं को परिवार की संपत्ति में अपना अधिकार मांगने से रोकते हैं। इस मुद्दे को समझने के लिए बांग्लादेश का एक उदाहरण लेते हैं। बांग्लादेश में महिलाओं ने समूहों में मिलकर आय सृजन के कामों को किया, उसके बाद उन्होंने परदे के मानकों के बारे में विचार-विमर्श किया था। कुछ अर्थशास्त्रियों (अमर्त्य सेन सहित) की धारणा के अनुसार, महिलाओं में स्वार्थ की कमी रहती है, जिसके कारण उन्हें गौण दर्जा मिलता है। हालांकि, अग्रवाल का कहना है कि स्वार्थ की कमी के कारण नहीं, बल्कि अभिप्राय की कमी और शारीरिक बाधाओं के कारण उनका महत्व कम आंका जाता है।

सामूहिक पर्यावरण कार्य

नारीवादी पर्यावरण अर्थशास्त्री के तर्क के अनुसार, महिलाएं प्रकृति के अधिक करीब होती हैं, प्रकृति सुरक्षा और संरक्षण के प्रति महिलाओं की सामूहिक जिम्मेदारी होती है। एक विश्वास के अनुसार, पर्यावरण विपरीतता की स्थिति उपनिवेश काल के दौरान सृजित हुई, परंतु यह समझना बहुत आवश्यक है कि यह विपरीतता स्थानीय बलों की जड़ों में है और उपनिवेश काल से पहले से इसका लाभ लिया जा रहा है। यह माना जाता है कि पर्यावरण में गिरावट ब्रिटिश शासन के दौरान हुई थी, लेकिन यह समझना ज्यादा जरूरी है कि पर्यावरण में गिरावट की जड़ें स्थानीय स्तर पर बहुत गहरी हैं जो ब्रिटिश शासनकाल से पहले होती रही है। दलित-गरीब-आदिवासी-वंचित महिलाएं पशुओं को चराने के लिए, चारा लाने के लिए, ईंधन के लिए और भोजन इकट्ठा करने जैसी नियमित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जंगल पर निर्भर रहती हैं। इस प्रकार, प्रकृति उन्हें भौतिक लाभ देती है, जिसके परिणाम स्वरूप वे प्रकृति के साथ तादात्म्य महसूस करती हैं और इसलिए, महिलाएं प्रकृति का संरक्षण करती हैं। हालांकि, प्रकृति के संरक्षण जिम्मेदारी केवल महिलाओं की ही नहीं है। लेकिन पुरुष अपना पुरुष होने का लाभ उठाते हैं और प्रकृति के संरक्षण की दिशा में कोई जिम्मेदारी नहीं उठाते हैं।

संगठनात्मक प्रबंधन

प्राकृतिक संसाधनों को संचालित करने वाला संस्थागत ढांचा जेन्डर असमानताओं की उपेक्षा करता है। इतना ही नहीं, इन असमानताओं पर ध्यान देते समय, वे असमानता के मौजूदा संसाधनों पर ध्यान देते हैं और इन असमानताओं को समाप्त करने वाले कारकों की अनदेखी करते हैं। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में महिलाओं भागीदारी के बारे में बात करें तो, परिवार के दबाव के कारण महिलाएं इस गतिविधि में सहयोग देती हैं लेकिन संस्थागत व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय

शेष पृष्ठ 20 पर

क्या महिला सशक्तिकरण से घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओ में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में बढ़ोतरी होती है?

'डेपलपमेन्ट इन प्रेक्टिस' पत्रिका वो. 26 अंक 8, नवंबर 2016 में प्रकाशित यह रिपोर्ट, 'नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ हैल्थ एंड फैमिली वेलफेयर', नई दिल्ली में काम करने वाली **मीराम्बिका महापात्र** द्वारा लिखी गयी हैं। 'उन्नति' की वंदना द्वारा सारांश यहां प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध द्वारा यह समझने की कोशिश की गई है कि क्या भारतीय परिप्रेक्ष्य में, महिला सशक्तिकरण के माध्यम से घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुंचाने को बढ़ावा दिया जा सकता है। यह रिपोर्ट अविभागीय अध्ययन द्वारा 14405 महिलाओं से बातचीत के आधार पर तैयार की गई है। सशक्तिकरण के कई पायदान पार कर लेने के बावजूद महिलाओं तक जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं नहीं पहुंच पाई हैं। यह दुर्व्यवस्था पक्षपाती संस्थागत ढाचों और नीतियों को दर्शाती है जो पितृसत्तामक मानकों से जकड़ी हुई हैं। घरेलू हिंसा को बड़े तौर पर एक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या की तरह पहचाना गया है जिसका महिला के शारीरिक, मानसिक और प्रजनन स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कई शोध में यह पाया गया कि घरेलू हिंसा बहुत से जीर्ण स्वास्थ्य रोगों को न्योता देती है जिससे महिला को अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने की क्षमता में कमी आती है। इससे महिला में आत्मग्लानी पनपती है और आत्मविश्वास कम हो जाता है। भारत में महिला अपराध उसके कोख से ही भ्रूणहत्या के रूप में शुरू हो जाते हैं और आगे जाकर दहेज़ हत्या, घरेलू हिंसा, देह व्यापार और यौन उत्पीड़न का रूप ले लेते हैं। महिला हिंसा के कई सामाजिक प्रभाव हैं, जैसे स्वास्थ्य सेवाओं की ज्यादा खपत, गैरहाजिरी के कारण उत्पादन क्षमता में गिरावट, विकलांगता, असामयिक मृत्यु इत्यादि। घरेलू हिंसा के पीछे छिपे कारण व्यक्तिगत या मानसिक कारणों से काफी परे हैं। ये अलग-अलग परिस्थितियों, समय, समाज, व्यावसायिक, शिक्षण, कमाई पर निर्भर करते हैं जिनकी वजह से इसका कोई एक अर्थ या व्याख्या तय करना कठिन है। अलग-अलग भाषाओं और सांस्कृतिक परिवेश में घरेलू हिंसा को भिन्न वैचारिक अवधारणाओं से देखा गया है।

महिला सशक्तिकरण के निर्धारक

आमतौर से महिला सशक्तिकरण को कुछ उपलब्धियों से पहचाना जाता है। जैसे महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी, क़ानूनी सुधार, बालिकाओं के लिए मुफ्त शिक्षा और आर्थिक सुरक्षा। कई शोधों से यह बात जाहिर हुई है कि पात्रता/अधिकार द्वारा सशक्तिकरण सबसे ज्यादा असरदायक होती है और लिंग भेदभाव, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पर सकारात्मक असर डालती है। महिला सशक्तिकरण को और भी तरह से समझने की कोशिश की गई है, जैसे - महिला को चयन का अधिकार, उसका नियंत्रण, निर्णय का अधिकार आदि। ज्यादातर समय महिला सशक्तिकरण को केवल आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समझा जाता है। जैसे महिला का संसाधनों पर नियंत्रण, शिक्षा, रोज़गार और निर्णायक मसलों में उसकी भागीदारी इत्यादि। शोध का मानना है कि शिक्षा और आर्थिक मज़बूती महिला को घरेलू हिंसा का प्रतिरोध करने का साहस देती है। अलग परिप्रेक्ष्य में महिला अलग तरह से सशक्त महसूस कर सकती है। घरेलू हिंसा के मामलों में महिला के द्वारा निर्णय लेने की क्षमता एक महत्वपूर्ण मानक है। इन मानकों के आधार पर घरेलू हिंसा को समझने की कोशिश की गई है।

यह शोध 18 राज्यों के शहर और देहात क्षेत्र की 14405 महिलाओं के साथ की गई बातचीत और 248 समूह चर्चा पर आधारित है। पहले की गई शोधों से यह जाहिर होता है कि महिला शादी के शुरूआती दौर में ज्यादा घरेलू हिंसा की शिकार होती है जबकि 35 साल से ज्यादा उम्र, बच्चों वाली महिलाएं घरेलू हिंसा की कम शिकार होती हैं। इस शोध में केवल 35 से कम उम्र वाली शादीशुदा महिलाओं को ही शामिल किया गया था।

अनपढ़ महिलाओं की तुलना में पढ़ी-लिखी महिलाएं घरेलू हिंसा की शिकार कम होती हैं। ऐसा सभी राज्यों और तबके की महिलाओं में देखा गया है।

परिवार की कमाई और घरेलू हिंसा के बीच विपरीत अनुपात है। अनुसंधानों के मुताबिक कार्यरत महिला घरेलू हिंसा की कम शिकार

बनती है। भारत में ज़्यादातर महिलाएं घर पर काम करती है या अकुशल मजदूर के तौर पर खेत में काम करती हैं। उन्हें मजदूरी नक़द नहीं मिलती जिससे उनकी खरीदने की क्षमता पर असर पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि महिलाएं जब नक़द कमाती हैं तो वो घरेलू हिंसा के विरुद्ध प्रतिरोध करती है। आर्थिक कारण घरेलू हिंसा के स्तर पर असर डालते हैं। महिला कमाती है या नहीं और कितना कमाती है वो पतियों के लिए हिंसा करने का मुख्य कारण रहा है। 36 प्रतिशत गृहणियों के मुकाबले 49 प्रतिशत कामकाज़ी महिलाएं घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं। जो महिलाएं घर खर्च में हाथ बंटाती हैं उन्हें घरेलू महिलाओं के मुकाबले ज्यादा हिंसा का शिकार बनने का खतरा होता है। इसका कारण मुख्यतः यह बताया जाता है कि नौकरी वाली या कामकाजी महिलाएं हिंसा की घटनाएं ज्यादा रिपोर्ट करती हैं। घरेलू खर्च में हाथ बंटाने पर भी पति का वर्चस्व या हिंसा में कोई कमी नहीं पाई गयी है। इस शोध के आकड़े यह बताते हैं कि शारीरिक, मानसिक, यौन उत्पीड़न से कामकाज़ी महिलाए ज़्यादा पीड़ित हैं।

घरेलू हिंसा से प्रभावित महिला के लिए स्वास्थ सेवाएं

भारत में मौजूदा स्वास्थ्य सेवाएं घरेलू हिंसा से पनपे जख्मों और चोटों का इलाज करने में अक्षम हैं। स्वास्थ्यकर्ता जैसे डॉक्टर, नर्स वो लोग हैं जो सबसे पहले पीड़िता के संपर्क में आते हैं। सामुदायिक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में लगभग सारी महिलाएं किसी न किसी प्रकार से जुड़ी होती हैं। इस वजह से स्वास्थ्य केंद्र महत्वपूर्ण है। हमारा पितृसत्तात्मक समाज महिलाओं को अपने ऊपर हुई हिंसा के बारे में खुल कर बात करने के लिए सहज वातावरण उपलब्ध नहीं कराता। जिसकी वजह से कई महिलाएं चाह कर भी डर और अपमान के कारण अपनी आपबीती नही कह पाती हैं। घरेलू हिंसा की शिकार 80 प्रतिशत महिलाएं अपने नज़दीकी स्वास्थ्य केंद्र से कम से कम एक बार संपर्क ज़रूर करती हैं। ज़ख़्मी महिलाएं औसतन 7 से 8 बार स्वयं या किसी और पीड़िता के लिए स्वास्थ्य कर्मियों से संपर्क करती हैं। स्वास्थ्य कर्मियों पर घरेलू हिंसा के ज़ख्मों की पहचान, उनका इलाज, काउन्सलिंग, कानूनी सलाह जैसी रेफरल सेवाएं प्रदान करने की जिम्मेदारियां होती हैं जिसमें वो ज़्यादातर विफल होते हैं। हिंसा से ज़ख़्मी महिला के रोज़मर्रा के कामों पर इलाज और सहायता की कमी का बुरा असर पड़ता है। बच्चे जब हिंसा देखते हैं तो वो इसे सहज व्यवहार समझ करके वैसा ही व्यवहार दोहराने के लिए प्रेरित होते हैं।

केरल के गाँव की एक महिला के बताये अनुसार भेदभाव और असामनता के कारण समाज में महिला को हमेशा पुरुष से नीचे का दर्जा दिया गया है। पढ़ी-लिखी लड़की को कैसा वर मिलेगा, यह उसके दहेज़ देने की हैसियत पर निर्भर करता है। मैं 12वीं पास होने के बावजूद एक अनपढ़ दिहाड़ी मजदूर के साथ ब्याह दी गयी। क्योंकि मेरे गरीब माँ-बाप के पास दहेज़ देने की हैसियत नही थी। हमारी शिक्षा में फर्क होने के कारण मेरे और मेरे पति के बीच अनुकूल रिश्ता नहीं है। हमारे झगड़े का मुख्य कारण खर्च करने के तरीके को लेकर होता है। मैं बच्चों की शिक्षा पर निवेश करना चाहती हूँ और मेरा पति शराब और जुए पर खर्च करना चाहता है। उसके कई अवैध सम्बन्ध भी हैं। मैं अपने आपको उससे दूर रखती हूँ कि शायद कभी वो सुधर जाए। मैं पिछले 13 साल से भुगत रही हूँ। शायद यही मेरी किस्मत में लिखा था क्योंकि समाज मुझे अकेले ज़िन्दगी जीने की इज़ाज़त नहीं देता।

आज के दौर में एक सशक्त महिला ऐसी है जो खुल कर परंपरागत रूप से स्थापित लैंगिक भेदभाव को चुनौती देती है। वो आर्थिक और सामाजिक रूप से सबल है। ऐसा माना जाता है कि जब एक महिला अपने जीवन से जुड़ी सारी बातों पर नियंत्रण रखती है और सारे फैसले खुद करती है तो समाज और राष्ट्र का सामाजिक और आर्थिक निर्माण होता है। सशक्त महिला खुलकर अपनी ज़िन्दगी जी सकती है जिसका उसके स्वास्थ्य पर सकारात्मक असर पड़ता है। भारत में महिला सशक्तिकरण, घरेलू हिंसा और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच पर शोध कम या ना के बराबर किये गए हैं। इस शोध में दो पहलुओं पर ध्यान दिया गया है:

1. क्या महिला सशक्तिकरण घरेलू हिंसा से पीड़ित महिला तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुँचाने में मदद करता है। और,
2. क्या महिला सशक्तिकरण से घरेलू हिंसा कम होती है?

महिलाओं की शिक्षा और रोज़गार उनमें 'ना' बोलने की ताकत और आत्मविश्वास जगाता है। इस शोध के आकड़ों से यह पता लगाने की कोशिश की गई है कि क्या महिला अपने इस सशक्त रूप का इस्तेमाल यौन अधिकारों के लिए कर पाती है या नहीं। लगभग 50 प्रतिशत महिला अपने पति के साथ शारीरिक संबंध बनाने से मना कर चुकी हैं। इसके दो मुख्य कारण थकान और अनिच्छा बताये गये हैं। बल्कि कारणों में स्त्री रोग, गर्भ धारण का डर और संबंध बनाने

के दौरान चोट या दर्द बताया गया है। भारत में पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति महिला को संबंध बनाने से इन्कार करने का अधिकार नहीं देती। अगर महिला इस सोच से हट कर कुछ करती है तो उसे अधिक हिंसा का सामना करना पड़ता है। आकड़े दर्शाते हैं कि संबंध बनाने से इन्कार करने वाली महिला चार गुणा ज्यादा हिंसा की शिकार होती है। शारीरिक चोट घरेलू हिंसा का एक निर्दयी रूप है। 52 प्रतिशत केसों में पति मुख्य हिंसक होता है। लगभग 9 प्रतिशत महिलाए शारीरिक हिंसा से पीड़ित होकर अस्पताल में भरती हुई हैं। आकडों पर गौर करने पर पता चलता है कि हर राज्य की चौथी महिला को पति या परिवार के अन्य सदस्य द्वारा शारीरिक यातना पहुंचाई गयी है। इनमें से 34 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उन्हें गर्भावस्था में भी शारीरिक चोट पहुंचाई गयी है। 18 प्रतिशत महिलाएं हिंसा के समय बीमार अवस्था में थी। सिर्फ 24 प्रतिशत को उपचार मिला, लेकिन 54 प्रतिशत महिलाओं को रोज़मर्रा के कामों में तकलीफ़ होने के बावजूद कोई स्वास्थ्य सेवा नहीं मिली।

स्वास्थ्य सेवाओं की प्रतिक्रिया

महिलाओं से पूछा गया कि क्या वो अपने जख्मों को स्वास्थ कर्मियों को खुलकर दिखाती हैं? सभी महिलाओं का कहना था कि वो अपनी चोटों को दुर्घटना बताती हैं। क्योंकि उन्हें सच बताने में शर्म महसूस होती है, परिवार और अपने भविष्य का भी डर होता है। इस शोध से पता चलता है कि ज़्यादातर समय स्वास्थ्य कर्मी हिंसा की पहचान नहीं कर पाते हैं। इसका कारण तैयारी या ट्रेनिंग की कमी, पीड़िता से पूछ नहीं पाना या असहज महसूस करना, पीड़िता की निजी जिंदगी में दखलंदाजी का डर, हिंसा साबित होने पर आगे क्या करें वह समझ नहीं पाना इत्यादि पाये गए। इन सब कारणों के बावजूद स्वास्थ्य कर्मियों की भूमिका अहम है क्योंकि पीड़िता और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र आपस में लगातार संपर्क में रहते हैं। चिकित्सा कर्मी अस्पतालों में इस तरह की मदद के लिए तैयार नहीं है, ना ही वो इस मुद्दे पर संवेदनशील पाये गये। समूह चर्चा के दौरान पढ़ी-लिखी कमाने वाली महिलाओं ने बताया कि वे स्वास्थ्य कर्मियों से नही बताती क्योंकि उन्हें पता है कि उनकी शिकायत 'मेडिको-लीगल' में दर्ज जाएगी और मामला कोर्ट तक पहुँच जाएगा। महिलाएं लम्बी क़ानूनी कार्यवाही से भयभीत होती हैं। जहाँ न्याय की उम्मीद ना के बराबर हो और ऊपर से पारिवारिक दवाब अलग से। इन महिलाओं का यह भी मानना था कि डॉक्टर उनकी मदद कर सकते हैं क्योंकि समाज में उनकी प्रतिष्ठा होती है जिसकी वजह से उनके पति डाक्टर की बात मानेंगे और हिंसा कम करेंगे। ■

पृष्ठ 17 का शेष

भागीदारी नहीं होती। कई नियमों ने महिलाओं की भागीदारी को कम कर दिया है। जैसे, एक परिवार के सिर्फ एक सदस्य वाला नियम अन्य महिलाओं को सदस्य बनने से रोकता है और वन संरक्षण नियम। इस तरह के नियमों के मद्देनजर गरीब महिलाएं जीवित रहने के लिए समुदाय के नियमों का उल्लंघन करती हैं।

अब, सवाल यह है कि क्या समुदाय के वन समूहों में महिलाओं को शामिल करने से वन उपयोग के नियम प्रभावित होते हैं? इस सवाल का जवाब बीना अग्रवाल (नारीवादी अर्थशास्त्री) इस तरह देती हैं - निर्णय लेने वाली इकाइयों में निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी से सहभागिता और निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रभावित होगी। समुदाय वन समितियों में महिलाओं की भागीदारी 25 प्रतिशत से 33 प्रतिशत हो, तो भूमिहीन महिलाओं सहित सभी महिलाओं की आवाज उठाई जाएगी।

जिन समितियों में ज्यादातर भूमिहीन महिलाएं थी, उन समितियों के नियम अधिक उदार थे, जो वन संसाधनों के लिए उनकी जरूरत का संकेत है। अग्रवाल के निष्कर्ष सूचित करते हैं कि ज्यादातर महिला या संपूर्ण महिला सदस्यों वाली समितियों द्वारा जंगलों का संरक्षण किया जाए, तो वह यह दर्शाता है कि जंगल अच्छी हालत में है। इसके अलावा, निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं को शामिल किया जाए, तो उनके द्वारा नियमों में अधिक सहयोग करने की संभावना रहती है। ■

भारत में शिक्षा के क्षेत्र में निजी और सरकारी स्कूलों में अभिनव पहल के माध्यम से शिक्षा के स्तर में सुधार किया जा सकता है

निजी और सरकारी स्कूलों में अभिनव पहल पर यह लेख **गौतम पटेल** द्वारा तैयार किया गया है। वे 'जे-पाल', दक्षिण एशिया में वरिष्ठ नीति प्रबंधक के रूप में काम करते हैं। यहाँ पर उन्होंने अनियमित मूल्यांकन के समय हुए अनुभवों के बारे में चर्चा की है। यह लेख 13 जून, 2017 को www.scroll.in पर प्रकाशित हुआ था।

हर साल की रिपोर्ट बताती है कि स्कूल में चार साल तक अध्ययन करने के बावजूद बच्चों को भाषा और गणित का बुनियादी ज्ञान भी नहीं है।

भारत में पिछले एक दशक में, लाखों बच्चों ने सरकारी स्कूलों में पढ़ना छोड़ दिया है। दूसरी ओर, प्राथमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले बच्चों के परिणाम काफी कम हैं। अब देश में निजी प्राथमिक स्कूलों में करीब 35 प्रतिशत बच्चे दाखिला लेते हैं। हालांकि, प्रति वर्ष प्रत्येक छात्र पर सरकार द्वारा बढ़ती लागत और निजी स्कूलों की फीस में नियमित वृद्धि के बावजूद, अध्ययन के समग्र परिणाम में कोई सुधार देखने को नहीं मिला है।

सरकार पर प्रदर्शन में सुधार करने का दबाव है जबकि माता-पिता पर अधिक फीस देने का दबाव है। इस संबंध में चर्चा ने उग्र रूप धारण किया है। इसके कारण सरकार निजी स्कूलों पर अधिक नियम लाद रही है, तो दूसरी ओर भारत के प्रमुख शहरों में माता-पिता फीस में वृद्धि के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे हैं। महंगी होती जा रही शिक्षा, और अध्ययन के निम्न परिणाम इस मुद्दे की चर्चा के केंद्र में हैं। लेकिन इस चर्चा में इस बारे में सवाल नहीं उठाये जाते कि शिक्षा के परिणामों को प्रभावी रूप से सुधारने के लिए क्या करना चाहिए। इस चर्चा को खर्च का मापन करके नहीं, बल्कि गहन मूल्यांकन के साथ आवश्यक प्रयास करके, खर्च की दृष्टि से प्रभावशीलता का मापन करके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिणाम लक्ष्यी बनाया जा सकता है।

इस अनियमित मूल्यांकन में प्रतिभागियों को दो समूहों में विभाजित किया जाता है, जिसमें प्रारंभिक चरण में, इन दोनों समूह की लाक्षणिकताएं लगभग एकसी होती हैं। इस तरह विभाजित करके कार्यक्रम की प्रभावशीलता का वैज्ञानिक पद्धति से मापन किया जा सकता है। दोनों समूहों के बीच फर्क सिर्फ इतना रहता है कि एक समूह को कार्यक्रम के तहत कवर किया जाता है, जबकि दूसरे समूह के लिए कार्यक्रम उपलब्ध नहीं होता। शोधकर्ता इन प्रतिभागियों पर नजर रखते हैं और कुछ समय के बाद परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है। दो समूहों के बीच फर्क के लिए कार्यक्रम को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

पिछले 15 वर्षों में भारत में अनियमित मूल्यांकनों का संग्रह करके बच्चों के शिक्षा परिणामों पर विभिन्न पहलुओं के प्रभाव का मापन किया गया है। इस वैज्ञानिक अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि परिणाम स्कूल सरकारी है या निजी, किताबें, कंप्यूटर और सामग्रियों पर निर्भर नहीं होते, बल्कि शिक्षण विधियों और अभिनव पहल की गतिविधियों जैसी बातों पर निर्भर करते हैं।

बड़े पैमाने पर सरकारी स्कूलों से निजी स्कूलों में पलायन

जिला शिक्षा सूचना प्रणाली (डाइस) के विश्लेषण के अनुसार, ग्रामीण इलाकों में 2010-2011 की अवधि के दौरान 1.75 करोड़ छात्रों द्वारा सरकारी स्कूल छोड़कर निजी स्कूलों में दाखिला

लेने का अनुमान है और लगभग 1.3 करोड़ छात्रों ने सरकारी स्कूलों में प्रवेश लिया था। नेशनल काउन्सिल फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च के 2010-2011 के सर्वेक्षण के अनुसार, प्राथमिक स्तर के करीब 35 प्रतिशत बच्चों को निजी स्कूलों में भर्ती कराया गया था। सरकारी स्कूल से बच्चों को निकालने के कारण माता-पिता पर खर्च का बोझ बढ़ जाता है। एसोसिएटेड चैंबर्स ऑफ कॉमर्स ऑफ इंडिया के 2015 के सर्वेक्षण के अनुसार, मेट्रो शहरों में निजी स्कूलों की फीस 10 साल में दोगुनी हो गई है। ऐसा अनुमान है कि सरकारी से निजी स्कूलों में छात्रों के पलायन के अनुमान को कम आंका गया है। इसका कारण यह है कि कई बच्चे सरकारी स्कूलों में प्रवेश लेते हैं (वे वहां से परीक्षा देते हैं) और साथ ही गैर-मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों में भी उपस्थित रहते हैं और वहां से शिक्षा प्राप्त करते हैं। ये स्कूल सरकार के मानकों (खेल का मैदान, योग्यता प्राप्त शिक्षक या जिन्हें सरकारी शिक्षकों के बराबर वेतन का भुगतान किया जाता है) को पूरा नहीं करते जिससे उनका पंजीकरण नहीं होता और वे कम खर्च पर चलती हैं। जिला शिक्षा सूचना प्रणाली (डाइस) के आंकड़ों के अनुसार 2013-14 में 21,000 से अधिक गैर-मान्यता प्राप्त स्कूलें मौजूद थी। गैर-मान्यता प्राप्त स्कूलों की यह उच्च दर सरकारी स्कूलों के प्रति माता-पिता का दृष्टिकोण दर्शाता है।

निजी ट्यूशन का खर्च

बच्चों को निजी स्कूलों में पढ़ाने के लिए माता-पिता को काफी अधिक खर्च करना पड़ता है। माता-पिता की आय का एक बड़ा हिस्सा हर साल निजी स्कूलों पर खर्च होता है। हालांकि, यह अनुमान पूरा नहीं है, क्योंकि निजी ट्यूशन का असंगठित व्यवसाय सरकारी और निजी स्कूलों दोनों के छात्रों तक फैला हुआ है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय द्वारा 2014 में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, देश में लगभग 7.1 करोड़ छात्र (देश के एक चौथाई

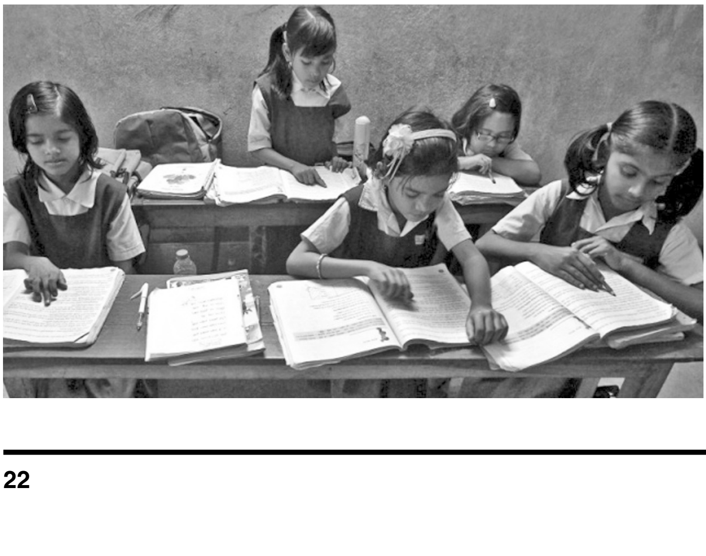

छात्र) निजी ट्यूशन लेते हैं। एसोसिएटेड चैंबर्स ऑफ कॉमर्स ऑफ इंडिया के 2013 के सर्वेक्षण में पाया गया कि निजी ट्यूशन छह साल में दोगुना हो गया था। अमीर और गरीब माता-पिता अपने बच्चों के ट्यूशन पर खर्च करते हैं।

शिक्षा का कम परिणाम

गैर सरकारी संगठन, 'प्रथम' की शिक्षा की वार्षिक स्थिति की रिपोर्ट' और गुणोत्सव जैसे सरकारी सर्वेक्षण जैसे वार्षिक रिपोर्ट सूचित करते हैं कि कई निजी और सार्वजनिक स्कूली बच्चे चार साल तक अध्ययन करने के बाद भी भाषा और गणित का बुनियादी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते।

नेशनल काउन्सिल फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च 2011-12 के सर्वेक्षण के अनुसार, पांचवीं कक्षा तक अध्ययन करने वाले, लेकिन कक्षा 9 तक नहीं पहुँचने वाले छात्रों की स्कूल छोड़ने की दर (ड्रॉपआउट रेट) 40 प्रतिशत थी और उसमें से भी 40 प्रतिशत छात्रों ने 9वीं कक्षा पूरी करने से पहले स्कूल छोड़ दिया था। सरकारी स्कूल के छात्रों का निजी स्कूलों में पलायन सरकार के लिए चिंता का विषय है। बच्चों के स्कूल छोड़ देने से हर साल सरकारी स्कूलों को बंद करना पड़ता है। अहमदाबाद नगर निगम को 2009-10 से 2016-17 के दौरान 25 प्रतिशत स्कूलों को बंद करना पड़ा था। सरकारी शिक्षा प्रणाली की विफलता के साथ माता-पिता पर वित्तीय बोझ ने निजी स्कूलों को सरकार और माता-पिता विरोधी के रूप में लाकर रख दिया है।

ट्यूशन केन्द्रों पर कोई नियमन नहीं

दिल्ली, महाराष्ट्र, राजस्थान और तमिलनाडु सहित देश भर की राज्य सरकारों ने निजी स्कूल की फीस को विनियमित करने के लिए नियामक कानून बनाए हैं। अप्रैल में निजी विद्यालय शुल्क की ऊपरी मर्यादा तय करके और फीस विनियामक नीति नियामक समिति स्थापित करके गुजरात दोहरी नियामक नीति बनाने वाला पहला राज्य बन गया है। इसके विपरीत, भारत के किसी भी राज्य ने निजी ट्यूशन केंद्रों के लिए नियामक कानून नहीं बनाया है। इतना ही नहीं, कई राज्यों के ट्यूशन केंद्र गुजरात की 15,000 से लेकर 27,000 रुपये की ऊपरी सीमा से अधिक फीस वसूल करते हैं। गुजरात में निजी स्कूलों के लिए दोहरा-विनियमन अर्थात निजी ट्यूशन केन्द्रों को दोहरा फायदा, क्योंकि जो निजी स्कूल जिन शिक्षकों को नहीं रख सकते, वे शिक्षक ट्यूशन केन्द्रों में चले

जाते हैं, और बच्चे परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करें इसके लिए माता-पिता अपनी बचत का एक बड़ा हिस्सा ट्यूशन पर खर्च कर देते हैं।

वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर प्राप्त उपाय

इस क्षेत्र हाल में किए गए वैज्ञानिक अध्ययन सूचित करते हैं कि माता-पिता निजी शिक्षण की तरफ जा रहे हैं, इसके लिए सरकारी स्कूलों की विफलता या निजी शिक्षण का व्यापक फैलाव जिम्मेदार नहीं है। पिछले 15 साल के आकस्मिक मूल्यांकन के निष्कर्ष सरकार और माता-पिता द्वारा पारंपरिक प्रयासों पर किए जाने वाले खर्च पर सवाल उठाते हैं और प्रभावी तरीकों का सुझाव देते हैं। ये तरीके बच्चों के संज्ञानात्मक विकास पर और उनके गैर-संज्ञानात्मक कौशल को मजबूत करने पर बल देते हैं।

निजी प्रबंधन उतना आसान नहीं है

आंध्र प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में अनियत अंतराल पर आयोजित मूल्यांकन के बारे में 2015 के अध्ययन के अनुसार, सरकारी स्कूलों की तुलना में निजी स्कूलें खर्च के मामले में अधिक कुशल पाई गई थी। लेकिन गणित और तेलुगू भाषाओं जैसे महत्वपूर्ण विषयों की शिक्षा के परिणामों में सुधार करने में ये स्कूलें प्रभावी नहीं रही थी। चार साल के अध्ययन के आधार पर पता चला कि निजी स्कूलों के शिक्षकों का अधिकांश समय गहन शिक्षा देने और कक्षाओं को नियंत्रण करने में चला जाता है। निजी स्कूलें कम संसाधनों में अधिक काम करती थी। सरकारी विद्यालय के हर छात्र पर वार्षिक खर्च निजी स्कूल की तुलना में तीन गुना अधिक था। इस अध्ययन से पता चलता है कि प्रबंधन के क्षेत्र में सुधार किया जाए, तो कम संसाधनों में भी बेहतर लक्ष्य हासिल किए जा सकते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं कि उससे शिक्षा के क्षेत्र में भी बेहतर परिणाम प्राप्त होंगे।

छात्रों की सीखने की गति के आधार पर शिक्षण कार्य

2016 में बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तराखंड, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में जमीनी स्तर पर शिक्षा मॉडल (सही स्तर पर अध्यापन मॉडल) के बहुविध अनियत आवधिक मूल्यांकनों पर अध्ययन किया गया था। यह मॉडल एक शिक्षण विषयक दृष्टिकोण है, जिसमें बच्चों का मूल्यांकन किया जाता है और उसमें उम्र या ग्रेड के अनुसार नहीं, बल्कि ज्ञान प्राप्त करने के स्तर के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है और समूह बनाए जाते हैं। इस

अध्ययन से पता चला है कि, बच्चों के शिक्षा के स्तर के आधार पर शिक्षा देने के 'प्रथम' के दृष्टिकोण के आधार पर शिक्षा के परिणामों में काफी सुधार आया था। इस नवीन शैक्षणिक पहल से सामान्य रूप से शिक्षकों के सामने आने वाली बाधाओं - जैसे विभिन्न शिक्षण स्तर वाले छात्रों के समूह को एक साथ शिक्षा देना, घर से ही बच्चों को बुनियादी शिक्षा लिए सहयोग नहीं मिल पाना, आदि को दूर करता है। पिछले कुछ वर्षों में किए गए इन अध्ययनों से विस्तृत सरकारी प्रणाली शिक्षा पद्धतियों और गतिविधियों में सबसे अच्छी अभिनव पहल किस तरह शुरू की जा सकती हैं, उसके बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए लागू करने वाले मॉडल का परीक्षण करता है। इन अध्ययनों से पता चला है कि शिक्षा सामग्री की तुलना में शिक्षा देने के दृष्टिकोण को बदलने की जरूरत है। इसके अलावा, शिक्षकों द्वारा नियमित रूप से नई शिक्षण विधियों को अपनाने में मदद करने के लिए नियमित रूप से स्कूल का दौरा करने के लिए प्रशासनिक संरचना होना आवश्यक है।

जब कंप्यूटर के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के लिए बेहतर शिक्षण विधियों और गतिविधियों को शुरू किया गया तब शिक्षण के सकारात्मक परिणाम देखने को मिले थे। दिल्ली में 2016 में कक्षा-6 से कक्षा-9 तक के छात्रों के लिए कंप्यूटर आधारित शिक्षा कार्यक्रम 'माइन्डस्पार्क' का मूल्यांकन किया गया था। 'माइन्डस्पार्क' कार्यक्रम, पिछले प्रश्न में छात्रों ने कैसा प्रदर्शन किया था उसका मूल्यांकन करके उसके आधार पर प्रश्न और सुझाव तय करता है। बच्चे के शिक्षा स्तर के आधार पर सुझाव तय करने का दृष्टिकोण और बच्चे की सीखने की व्यक्तिगत गति को ध्यान में रखने का दृष्टिकोण विशेष रूप से शिक्षा के सबसे निचले स्तर वाले बच्चों के लिए सकारात्मक परिणाम लाने वाला था।

शेष पृष्ठ 28 पर

हताशा (अवसाद) के खिलाफ लड़ाई में असमानताओं पर ध्यान केंद्रित करना क्यों आवश्यक है?

'अंबा सालेलकर' द्वारा लिखा गया यह लेख thewire.in वेबसाइट पर 9 अप्रैल, 2017 को प्रकाशित हुआ था, जिसका हिन्दी अनुवाद यहा प्रस्तुत किया गया है। अंबा सालेलकर, 'इक्वल्स सेन्टर फॉर सोशल जस्टिस' की वकील हैं। यह संगठन विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों से संबंधित नीति और बजट के समर्थन से संबंधित कार्य करता है।

प्रधानमंत्री द्वारा विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर दिया संदेश समय की मांग के अनुरूप और महत्वपूर्ण होने के बावजूद, उसमें संयुक्त राष्ट्र के विशेष दूत श्री डेनियस पुरास द्वारा हताशा के लिए जिम्मेदार मूलभूत मुद्दों को उसमें शामिल नहीं किया गया था।

मुख्य धारा के मीडिया में अन्य मानसिक समस्याओं की तुलना में हताशा को अधिक प्राथमिकता दी जाती है। इसके लिए कई कारण जिम्मेदार हैं। यह काफी हद तक 'संभाली जा सके' वैसी स्थिति मानी जाती है। इसके अलावा, इसके कोई प्रत्यक्ष हिंसक परिणाम नहीं होते। इस मनस्थिति के शिकार व्यक्ति अपने विचारों को पेश करने के लिए किसी एजेंसी को लगाते हैं, जिसमें कई प्रसिद्ध हस्तियां शामिल होती हैं। रासायनिक असंतुलन को दूर करने के लिए डिप्रेशन (अवसाद) दूर करने वाली डॉक्टरी देखभाल के लिए शब्द प्रयोजनों को सांस्कृतिक शब्दकोशों में भी स्थान मिला है। इतना ही नहीं, हाल ही में संसद के दोनों सदनों में पारित मानसिक स्वास्थ्य बिल (विधेयक) पर आयोजित विचार-विमर्श भी आत्महत्या के प्रयास को अपराध की सूची से निकालने पर केन्द्रित था। उल्लेखनीय है कि आत्महत्या को निराशा (हताशा) का परिणामी कदम माना जाता है।

कुंठा की स्थिति पैदा होने और इसके विकसित होने से संबंधित आंकड़ों के उपलब्ध विवरणों में बढ़ोतरी हुई है। हालांकि, जागरूकता की कमी और मानसिक विकलांगता वाले व्यक्ति को दरकिनार करने के व्यवहार के कारण इस साल के विश्व स्वास्थ्य दिवस का विषय 'हताशा' बहुत महत्वपूर्ण है। देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और संयुक्त राष्ट्र के विशेष दूत श्री डेनियस पुरास ने अवसाद की स्थिति के बारे में अपने महत्वपूर्ण विचारों को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, हर किसी को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम मानकों को प्राप्त करने का अधिकार है। इस अधिकार के माध्यम से अवसरों का सृजन होता है और भावी मार्गदर्शन मिलता है। 'मन की बात' कार्यक्रम के दौरान मोदी ने विकलांगता के सामाजिक मॉडल पर जोर दिया जो सराहनीय है। उन्होंने अवसाद की समस्या को गैर चिकित्सा परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया और मानसिक आवश्यकता के संदर्भ में प्रभावी माहौल पैदा करने पर बल दिया। इसके साथ ही उन्होंने मित्र और परिवार कैसे मानसिक समस्याओं की पहचान कर सकते हैं उसके सरल, लेकिन प्रभावी उदाहरण दिए। प्रधानमंत्री के भाषण से लिए गए हताशा की ओर ले जाने वाले कारण उलझन में डालने वाले हैं - विशेष रूप से हॉस्टल में रहने वाले और अकेलेपन से पीड़ित छात्रों के संदर्भ में - जिसके द्वारा दलित छात्रों द्वारा हाल ही में की गई आत्महत्या को मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों के रूप में पेश करने का प्रयास किया गया था। व्यक्ति को मानसिक विकलांगता या अकेलेपन की ओर ले जाने वाले संरचनात्मक असंतुलन की पहचान करना आवश्यक है, लेकिन उसके स्थान पर परिस्थिति से लड़ने की अक्षमता की वजह से अपना इलाज करने की जिम्मेदारी उस व्यक्ति पर पड़ जाती है।

विशेष दूत साक्ष्य के आधार पर लिखते हैं कि 'अवसाद का व्यापक रूप से (बचपन में) अत्यधिक तनाव और यौन, शारीरिक

और संवेदनात्मक उत्पीड़न सहित बचपन की प्रारंभिक विपरीत परिस्थितियों के साथ गहरा संबंध है। इसके साथ ही उसका लिंग असमानता और लिंग आधारित हिंसा सहित असमानता और हिंसा तथा ऐसी कई विपरीत परिस्थितियों के साथ सीधा संबंध है। अगर गरीबी, सामाजिक बहिष्कार के शिकार लोगों की जरूरतें पूरी नहीं हों और उनके अधिकारों की रक्षा नहीं हों तब परेशानी का सामना करना पड़ता है।' इसके लिए वे आबादी और व्यक्तिगत स्तर पर हस्तक्षेप का सुझाव देते हैं। भारत की विकास की प्रक्रिया से गुजर रही मानसिक स्वास्थ्य नीति के लिए और सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपरोक्त हस्तक्षेप (उपाय) सुसंगत हैं। एक सुझाव के अनुसार, आबादी के स्तर पर, व्यक्तियों, परिवारों और समुदाय के लचीलेपन को मजबूत बनाने और जोखिम वाले कारकों को कम करने के लिए सामान्य स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीबी उन्मूलन करने और हिंसा रोकथाम की नीतियों और सेवाओं में मानसिक स्वास्थ्य का मापन होना चाहिए।

हाल ही में लागू विकलांग अधिनियम के तहत गरीबी उन्मूलन और विकास परियोजनाओं के तहत (मानसिक मंदता सहित) विकलांग व्यक्तियों के लिए 5 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इससे पहले यह अधिनियम, विकलांगता अधिनियम, 1995 के रूप में लागू था। इसमें 3 प्रतिशत के साथ एक समान प्रावधान था, लेकिन तमिलनाडु जैसे राज्य के विभिन्न विभागों में भी पिछले पांच वर्षों में विकलांग व्यक्तियों के लिए कुल व्यय का केवल 0.2 प्रतिशत ही आवंटित किया गया था। सरकारी कार्यक्रमों का लाभ लेने वाले व्यक्तियों की विकलांगता के प्रकार के बारे में वर्गीकृत विवरण नहीं रखा जाता है। इसलिए इसके डेटा उपलब्ध नहीं हैं कि मानसिक विकलांगता वाले व्यक्तियों ने इस योजना का कितना फायदा उठाया है। इसमें राज्य की राजधानी के स्तर पर मानसिक बीमारी के प्रमाणीकरण की व्यवस्था होने के कारण मनो-सामाजिक विकलांगता वाले व्यक्ति कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठा सकते। जो सरकारी लाभ मिलते हैं उनके मुकाबले यात्रा व्यय और प्रमाणीकरण का खर्च अधिक हो जाता है।

अवसाद और आत्महत्या की प्रेरणा की रोकथाम के लिए जैव चिकित्सा उपचार के बारे में बहस के दौरान उपचार लेने वाले और उपयोगकर्ताओं द्वारा बताई गई बातों पर से खास दूत ने कई महत्वपूर्ण टिप्पणियां की हैं। वे कहते हैं कि, 'अवसाद और अन्य परिस्थिति के प्राथमिक उपचार के रूप में साइकोट्रॉपिक उपचार के उपयोग के सबूत नहीं मिलते हैं। 'अन्य मानसिक स्वास्थ्य स्थिति के प्रबंधन में दवाओं के उपचार के महत्व के साथ सहमति व्यक्त करते हुए यह पता चला कि 'दवाओं के उपचार और अन्य जैव-चिकित्सीय हस्तक्षेप उपचार से सुधार की तुलना में नुकसान अधिक होता है। इससे स्वास्थ्य अधिकार की अनदेखी होती है। इसलिए, इस गतिविधि को छोड़ देना चाहिए।'

विशेष दूत मनोचिकित्सकों के स्थान पर सामान्य देखभाल कर्ताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली देखभाल को खर्च की दृष्टि से किफायती मनोसामाजिक उपचारों के बारे में बात करते हैं। सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के वर्तमान तरीकों को मजबूत करके इन सेवाओं को प्रदान किया जा सकता है। इसके लिए, उनकी संख्या में वृद्धि कर सकते हैं, उनके वेतन और भत्ते निर्धारित कर सकते हैं, और अन्य विकासशील देशों में शुरू किए गए मॉडलों की सहायता के माध्यम से अभिनव प्रणाली भी विकसित की जा सकती है। नए मानसिक स्वास्थ्य कानून और नवीनतम मानसिक स्वास्थ्य नीतियों के कार्यान्वयन के बाद, विशेष दूत के सुझाव मार्गदर्शन प्रदान करने के साथ-साथ भावी जोखिम से भी सावधान करते हैं।

उम्मीद है कि मनो-सामाजिक विकलांग व्यक्तियों के प्रति प्रधान मंत्री की प्रतिबद्धता को, जिसकी विवादास्पद 'रासायनिक असंतुलन' के स्थान पर विशेष दूत वकालत करता है, वह 'शक्ति असंतुलन' और असमानताओं पर जोर देकर मानसिक स्वास्थ्य में निवेश में बदलाव के संदर्भ में है। प्रधान मंत्री का तमिल लोकप्रिय सांस्कृतिक संदर्भ का खतरा मोल लेते हुए, 'दमन के बजाय अवसाद की अभिव्यक्ति' का आह्वान करना सही हो सकता है, उत्पीड़न की संरचनाओं को विखंडित करना दूसरा हो सकता है। मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति की रोकथाम और उसके प्रबंधन में (व्यक्ति को) सामुदायिक सेवा और योग की गतिविधि संबद्ध करने के अलावा कई क्षेत्र भी शामिल हैं। मानसिक समस्याओं वाले व्यक्ति किसी भी स्थिति का आसानी से शिकार बन जाते हैं, इसलिए इस समस्या पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। जैसे रोजगार के मामले में, ओईसीडी के आंकड़ों के अनुसार यह पाया गया है कि मानसिक स्वास्थ्य समस्या वाले व्यक्तियों के बेरोजगार होने की संभावना दो से तीन गुना अधिक होती है। साथ ही उन्हें नौकरी से हटाए जाने की संभावना भी अधिक होती है। इसकी वजह से उनके मानसिक स्वास्थ्य में अधिक गिरावट होती है। विकलांगता अधिनियम,

2016 में 'कौशल वर्धन और रोजगार' के बारे में संदिग्ध अध्याय दिया गया है, जिसके हिसाब से सभी (सार्वजनिक और निजी) संस्थानों में समान अवसर की नीतियों को अनिवार्य बनाया गया है, लेकिन रोजगार मामले में विकलांग व्यक्तियों से भेदभाव नहीं रखने का कानून केवल सरकारी संस्थाओं के लिए ही लागू किया गया है। इस मामले में सुधार करने के लिए सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप की भी आवश्यकता हो सकती है। कानूनी या उपयुक्त उद्देश्य के मामले में, समग्र रूप से यह कानून विकलांग व्यक्ति के साथ भेदभाव करने देता है। अगर कोई व्यक्ति अपनी विकलांगता के कारण काम के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए प्रयास कर रहा हो, तो ऐसे व्यक्ति के खिलाफ भेदभाव किया जा सकता है। व्यक्तिगत और नीतिगत स्तर पर संवाद करने के लिए ये जटिल मुद्दे हैं, लेकिन विश्व स्वास्थ्य दिवस के सूत्र का अनुसरण करते हुए, 'चलो चर्चा करें।' स्त्रोतः https://thewire.in/122429/mental-health-depression-inequality/

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सर्वोच्च मानकों का आनंद उठाने के अधिकार के लिए विशेष दूत, 'श्री डेनियस पुरास' द्वारा विश्व स्वास्थ्य दिवस, 7 अप्रेल 2017 को 'हताशाः मानसिक स्वास्थ्य के प्रति हमारे नजरिए के बारे में बहस' के विषय में दिए गए वकतव्य के अंश।

जून 2014 में अपने छब्बीसवें सत्र में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने, लिथुआनिया के श्री डेनियस पुरास को हर व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सर्वोच्च मानकों का आनंद उठाने के अधिकार के लिए विशेष दूत नियुक्त किया था। मानसिक स्वास्थ्य और शिशु स्वास्थ्य पर काफी विशेषज्ञता वाले मेडिकल डॉक्टर डेनियस पुरास 1 अगस्त 2014 से संयुक्त राष्ट्र विशेष दूत का कामकाज देख रहे हैं।

विश्व स्वास्थ्य दिवस पर मैं इसके मुख्य विषय - हताशा - पर चर्चा के लिए प्राप्त अवसर का स्वागत करता हूं।

इस साल के विषय के रूप में हताशा को चुना गया, जो बहुत संगत है। स्वास्थ्य क्षेत्र में नई वैश्विक प्राथमिकता के रूप में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ रही है और मानव विकास की आवश्यकता के रूप में उसे मान्यता मिली है। मानव का स्वास्थ्य अधिकार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने वाले मापदंड के अधिकार की समावेशी गारंटी मानी जाती है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होना जरूरी है। हर व्यक्ति को अधिकार है कि उसे ऐसा माहौल मिले जिससे उसके स्वास्थ्य और गरिमा को बढ़ावा मिले।

वैश्विक समुदाय के रूप में हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि हताशा सहित कमजोर मानसिक स्वास्थ्य से पीड़ित व्यक्ति को उपचार और सहायता मिलनी चाहिए। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बीच एकरूपता सिद्ध करने के लिए इस क्षेत्र में राजनीतिक स्तर पर ध्यान दिया जाए और निवेश में वृद्धि की जाए, इस विचार को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हो रही है। साथ ही, नागरिक समाज और अन्य क्षेत्रों में कानूनी, नीतिगत और सेवा स्तर की मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रतिक्रियाओं का पता लगाने के लिए मानव अधिकारों का उपयोग किया जा रहा है। दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में सैकड़ों लोग निराशा और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी अन्य स्थितियों का शिकार बनते हैं। वे पर्याप्त उपचार या सहायता प्राप्त नहीं पाते। सर्वमान्य मत यह है कि यह स्थिति स्वीकार्य नहीं है और इस क्षेत्र में ध्यान देना और उसे ठीक करना आवश्यक है। हालांकि, किस तरह की मध्यस्थता को प्राथमिकता देना चाहिए उस बारे में चर्चा होना जरूरी है? हितधारकों के अनुभवों और प्रमाणों से पता चलता है कि हताशा का व्यक्तियों और समाज पर 'बोझ' के रूप में बायोमेडिकल निरूपण कार्यान्वयन और नीति निर्धारण के लिए उपयुक्त प्रतिक्रियाएं विकसित करने के लिए अपर्याप्त है। यह एक व्यापक और सार्वजनिक स्वास्थ्य और मानव हित संबंधी प्रश्न है, जिस पर मानसिक स्वास्थ्य क्षेत्र में हम कैसा निवेश करते हैं और हताशा जैसी स्थिति का प्रबंधन कैसे किया जा रहा है, इसके लिए तत्काल पुनःविचार करना आवश्यक है।

स्वास्थ्य के अधिकार में स्वास्थ्य सेवाएं और मानसिक स्वास्थ्य - सामाजिक और आंतरिक निर्णायकों के मिलने वाले लाभ शामिल हैं। मनो-सामाजिक उदासी और कष्ट के विभिन्न रूपों के उपचार के लंबे समय से बायोमेडिकल परंपरा के पीछे स्वास्थ्य के सामाजिक और आंतरिक निर्धारकों को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता। इसके बाद, स्वास्थ्य अधिकार के साथ-साथ त्वरित बढ़ते प्रमाणों को भी

अनदेखा किया जाता है। यह न केवल स्वास्थ्य के अधिकार को नजरअंदाज करता है, बल्कि यह तेजी से बढ़ते साक्ष्य आधार की उपेक्षा भी करता है।

जैसे, निराशा का बचपन में हुए गहरे विषाद और यौन, शाररिक और संवेदनात्मक शोषण जैसे बालपन के शुरुआती वर्षो में अनुभव की गई विपरीतताओं के साथ सीधे संबंध होने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। इसमें लैंगिक असमानता और यौन (लिंग) आधारित हिंसा और अन्य बहुत ही मुश्किल हालात शामिल हैं। विशेष रूप से गरीबी या सामाजिक बहिष्कार के शिकार व्यक्तियों की आवश्यकताएं पूरी ना हों और उनकी हकों की रक्षा नहीं हो, तब उन्हें ऊपर के हालातों का सामना करना पड़ता है। इस सबूत को इकट्ठा करने और मानव हकों को प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत देखभाल और सहायता के साथ आबादी-आधारित मध्यस्थता का संतुलन रखने वाले नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जनसंख्या के स्तर पर हताशा का निवारण करने के प्रभावी और अधिकार आधारित अधिकारों के लिए सामान्य स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीबी, हिंसा निवारण आदि क्षेत्र की नीतियों और सेवाओं में मानसिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन आवश्यक है। ताकि, बड़े जोखिम वाले कारकों को कम किया जा सके और साथ ही, सुरक्षात्मक शक्तियों और व्यक्ति, परिवार और समुदाय की अनुकूलता अधिक मजबूत हो सके।

व्यक्तिगत स्तर पर, अधिकार आधारित मानसिक स्वास्थ्य सेवा संवोदनात्मक और सामाजिक निराशाओं का शिकार बने व्यक्तियों के लिए समुदाय में उपलब्ध और खर्च की दृष्टि से किफायती मनो-सामाजिक कार्यकलापों की एक बड़ी श्रृंखला को सुनिश्चित करना चाहिए। महत्वपूर्ण बात यह है कि, अधिकांश मामलों में इन सुविधाओं को पहुंचाते समय मनोचिकित्सा क्षेत्र में निपुणता प्राप्त होना जरूरी नहीं है। उदाहरण के लिए, कम आय वाले देशों में जहां मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों की कमी है, वहां फैमिली डॉक्टर, समुदाय नर्स, होम विज़िटर्स आदि जैसे सामान्य स्वास्थ्यकर्मी किफायती ढंग से मनो-सामाजिक मध्यस्थता (उपचार) उपलब्ध करा सकते हैं। हल्के और सामान्य उदासी वाले विशाल वर्ग के लिए खर्च की दृष्टि से किफायती (सावधानी पूर्वक प्रतीक्षा करने से शुरू करके) मानवीय संवाद पर आधारित विशिष्टीकृत या गैर-विशिष्टीकृत कार्यविधि (उपचार) की जानी आवश्यक है और उसे महत्वपूर्ण उपचार माना जाना चाहिए।

खेदजनक बात यह है कि, हाल के दशकों में मानसिक स्वास्थ्य का अधिक मात्रा में चिकित्सक उपचार (मेडिकलाइज़ेशन) पर ध्यान दिया गया है। इसके साथ ही, निराशा और आत्महत्या की रोकथाम के उपचार सहित बायो-मेडिकल देखभाल का अधिक उपयोग हो रहा है। अनुसंधान के परिणामों का पूर्वाग्रह और चुनिंदा उपयोग के कारण मानसिक स्वास्थ्य संबंधी नीतियों और सेवाओं पर इसके नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। जनता, स्वास्थ्य सेवा के लाभ लेने वाले हितधारकों, नीति निर्धारकों, चिकित्सा क्षेत्र के छात्रों और डॉक्टरों जैसे महत्वपूर्ण हिस्सेदारों को गलत जानकारी प्रदान की जाती है। हताशा और अन्य स्थितियों के लिए साइकोट्रोपिक मेडिकेशन (उपचार) का उपयोग करने के साक्ष्य नहीं मिलते हैं। रिडक्टिव न्यूरोबायोलॉजिकल पैराडिग्म उपचार (इंटरवेंशन) और अन्य चिकित्सीय उपचार (चिकित्सा) का ज्यादा उपयोग सुधार लाने के बजाए नुकसान अधिक करता है और स्वास्थ्य अधिकार की उपेक्षा होती है। इस प्रकार, इस तरह के उपचारों का परित्याग करना चाहिए। गंभीर निराशा और अन्य मानसिक स्वास्थ्य संबंधी रोगों की चिकित्सा के लिए जैव-चिकित्सक (बायोमेडिकल) दिग्दर्शन (उपचार) महत्वपूर्ण उपचार पद्धति रहेगी। हालांकि, हमें यह नहीं मानना चाहिए कि चिकित्सकीय उपचार और अन्य जैव-चिकित्सकीय उपचार के उपयोग आम तौर पर सामाजिक समस्याओं, असमान सत्ता संबंधों, हिंसा और अन्य विसंगतियों के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं और हमारे सामाजिक और संवेदक स्थिति का निर्माण कर समस्या निवारण करने के लिए हो रहा है। 'रासायनिक असंतुलनों' के स्थान पर 'सत्ता (या शक्ति) के असंतुलन' पर ध्यान केन्द्रित करके मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में निवेश में परिवर्तन करना आवश्यक है।

'चलो, चर्चा करें' - 2017 के विश्व स्वास्थ्य दिवस के लिए बहुत ही बेहतरीन नारा है। लोग अपनी हताशा के बारे में बात करें, खुशी या दुःख की भावना महसूस कराने वाले कारकों के बारे में वे क्या सोचते हैं, उसके बारे में बात करना जरूरी है। नीति निर्माताओं को इस पर चर्चा करनी चाहिए कि व्यक्तियों और समाज के मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देने में कहां गलती हुई और अब क्या परिवर्तन करना चाहिए। यह बहुत ही जटिल विषय है, लेकिन इसके महत्व को देखते हुए इस बारे में चर्चा करने की आवश्यकता है। इस बारे में अधिक जानकारी के लिए देखेंः http://www.ohchr.org/ EN/ NewsEvents/Pages/DisplayNews.aspx? NewsID=21480 &LangID=E# sthash.bxwyHCxR.dpuf ■

पृष्ठ 23 का शेष

गैर-संज्ञानात्मक कौशल वर्धन के लाभ

अनुसंधान से पता चला है कि महत्वाकांक्षा और लचीलापन बच्चों की दीर्घकालीन सफलता के लिए एक शक्तिशाली गैर संज्ञानात्मक कौशल है। 2012 के अध्ययन में हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के गांवों के 3,200 परिवारों की महिलाओं की रोजगार से संबंधित जानकारी और सहायता के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया था। इस काम के तहत तीन साल तक साल में एक बार आधे दिन के कैरियर मेले का आयोजन किया जाता था और रोजगार के लिए सहायता प्रदान की जाती थी, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि हुई और शादी और गर्भधारण की अवधि में बढ़ोतरी हुई। बांग्लादेश के ग्रामीण क्षेत्रों में आयोजित एक अन्य अध्ययन में 15,000 से भी अधिक लड़कियों को कवर करते हुए छह महीने के लिए आयोजित किशोरी सशक्तिकरण कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया गया था। इसमें 4.5 साल के बाद शिक्षा परिणामों में सुधार देखा गया था और स्कूल जाने में 20 वर्ष की लड़कियों की संख्या में वृद्धि हुई थी। 'किशोरी कोन्था' कार्यक्रम के हिस्से के रूप में अधिक से अधिक 20 लड़कियों का समूह उनकी शिक्षा, शादी और बच्चे पैदा करना जैसे विषयों पर निर्णय लेने में उनकी सामाजिक क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से नियमित रूप से बैठकें आयोजित करता है।

इन वैज्ञानिक मूल्यांकन के अध्ययन दर्शाते हैं कि सरकार और माता-पिता को बच्चों की शिक्षा के क्षेत्र में दीर्घकाल में सकारात्मक परिणाम लाने के लिए बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के लिए शिक्षा के सही तरीकों और गतिविधियों में अधिक निवेश करने के लिए और गैर-संज्ञानात्मक कौशल वर्धन करने पर विचार करने पर ध्यान देना चाहिए। भारत की सरकारी शिक्षा व्यवस्था में प्रभावी प्रयासों को बेहतर रूप से स्थापित करने के बारे में अध्ययनों को वर्तमान अप्रभावी गतिविधियों के स्थान पर भारतीय बच्चों को वास्तव में उपयोगी शिक्षा प्रदान करने के कार्य में मदद करना चाहिए। (स्रोतः https://scroll.in/article/) ■

उन्नति

उन्नति

विकास शिक्षण संगठन

जी-1, 200, आज़ाद सोसायटी, अहमदाबाद-380015

फोनः 079-26746145, 26733296 फैक्सः 079-26743752 email: sie@unnati.org वेबसाइटः www.unnati.org

राजस्थान क्षेत्रीय कार्यालय

650, राधाकृष्णन पुरम, लहरिया रिसोर्ट के पास, चौपासनी-पाल बाई पास लिंक रोड, जोधपुर-342014, राजस्थान

फोनः 0291-3204618 email: jodhpur_unnati@unnati.org

इस बुलेटिन के लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं।

दीपा सोनपाल, अरविंद अग्रवाल, रमेश पटेल : ईमेलः sie@unnati.org, publication@unnati.org

अनुवादः आर. के. गुप्ता

मुद्रकः बंसीधर ऑफसेट, अहमदाबाद

केवल सीमित वितरण के लिए

आप लोक शिक्षण व प्रशिक्षण के लिए विचार में प्रकाशित सामग्री का सहर्ष उपयोग कर सकते हैं। कृपया सौजन्य का उल्लेख करना न भूलें और साथ ही अपने उपयोग से हमें अवगत करवायें ताकि हम भी उससे कुछ सीख सकें।